हज़रत मुहम्मद और इसलाम

सुन्दरलाल

प्रकाशक

विश्वम्भरनाथ

२४२ साउथ मलाका, इलाहाबाद

नवम्बर १९४१

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक

विश्वम्भरनाथ

विश्ववाणी प्रेस

साउथ मलाका, इलाहाबाद

अम्र लिखता है मैंने पैग़म्बर से पूछा—"इसलाम क्या है ?" उन्होंने जवाब दिया—"ज़बान को पाक रखना और मेहमान की ख़ातिर करना।" मैंने पूछा—"ईमान क्या है ?" उन्होंने जवाब दिया—"सब्र करना और दूसरों की भलाई करना।"—अहमद

ज़रूरी बात

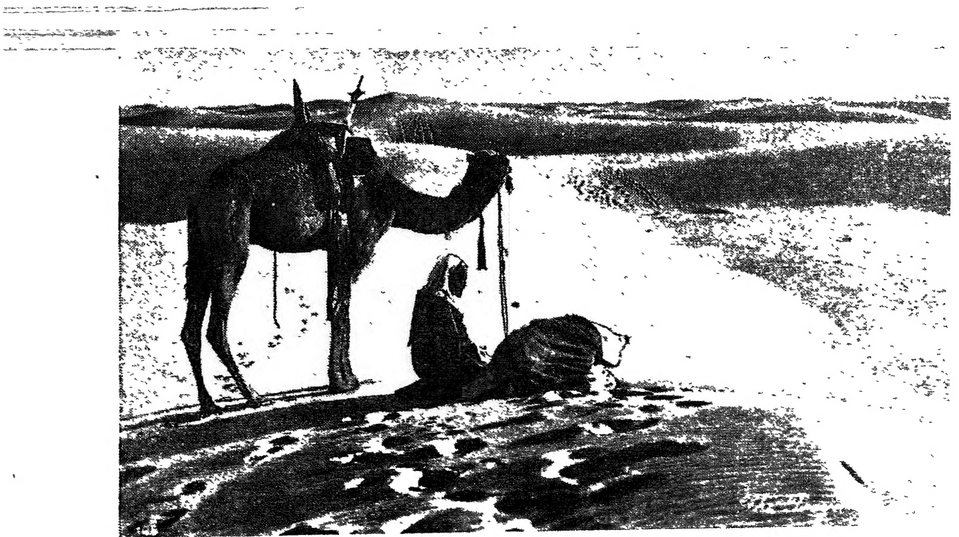
पण्डित सुन्दरलाल जी कई साल से दुनिया के धर्म, मज़हब और कलचर पर एक बड़ी किताब लिख रहे हैं जो कई वजहों से अभी पूरी नहीं हो सकी। "हज़रत मुहम्मद और इसलाम" उसी का एक छोटा सा हिस्सा है। कुछ दोस्तों के कहने पर और इसकी ज़रूरत को देखते हुए इसे अलग छापकर निकाला जा रहा है। इसकी बोली आसान रखी गई है कि सब समझ सकें। नागरी और उर्दू दोनों लिखावटों में यह एक ही बोली में छापी गई है।

यह किताब दोनों लिखावटों में हमारे यहां से मिल सकती है।

१४२ साउथ मलाका
इलाहाबाद
१५ नवम्बर, १९४१

विश्वम्भरनाथ

हज़रत मुहम्मद और इसलाम



अरब के रेगिस्तान में शाम की नमाज़

अरबों का देश

हज़रत मोहम्मद का जन्म अरब देश में हुआ था।

यह देश हिन्दुस्तान से पच्छिम में एशिया के दक्खिन-पच्छिम के कोने में है। उसके तीन तरफ़ पानी है। पूरब में फ़िरात नदी और उसके बाद ईरान की खाड़ी, दक्खिन में हिन्द महासागर और पच्छिम में लाल समुद्र। उत्तर में कुछ दूर तक रूम सागर है और फिर शाम (सीरिया) का देश जो तुर्की से मिला हुआ है। लाल समुद्र अरब को अफ़रीका के पुराने देशों मिस्र और इथियोपिया से अलग करता है और ईरान की खाड़ी अरब को ईरान से अलग करती है। बम्बई और कराची के बन्दरगाहों से अरब एक हज़ार मील से कम है। अरब का मशहूर बन्दरगाह अदन, जिसे यूरोप से आने वालों के लिये हिन्द महासागर का मोहाना कहा जा सकता है, (१९४० में) अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में है।

अरब की लम्बाई उत्तर से दक्खिन तक क़रीब १५०० मील और चौड़ाई पूरब से पच्छिम तक इसकी लगभग आधी है। फैलाव हिन्दुस्तान के आधे से कुछ ज़्यादह है लेकिन आबादी मुशकिल से हिन्दुस्तान का पचासवां हिस्सा।

बात यह है कि अरब का बड़ा हिस्सा, ख़ास कर बीच का, एक बहुत बड़ा रेगिस्तान है जिसमें कहीं कहीं सैकड़ों मील तक पानी या हरियाली का निशान तक नहीं मिलता। कहीं कहीं बीच बीच में और ख़ास कर किनारों के आस पास ऊंची पहाड़ियाँ और हरी भरी घाटियाँ हैं जिनमें किसी किसी जगह तरह तरह के नाज और क़हवे के अलावा सेब और नाशपाती, अंजीर और बादाम, अनार और अंगूर जैसे फल भी बढ़िया और बहुतायत के साथ होते हैं। लेकिन अरब का ख़ास मेवा खजूर है जिसकी दुनिया में कहीं इतनी क़िस्में नहीं होतीं जितनी अरब में। वहां के ख़ास जानवर ऊंट, घोड़े और गधे हैं। अरब के बराबर तेज़ और उम्दा घोड़े दुनिया में और कहीं नहीं होते और वहां के गधे भी ख़ूबसूरत, ऊंचे और तेज़ चलने वाले होते हैं।

यूरोप और दूसरे मुल्कों से आने वाले लोग अरब की आबोहवा की खुले दिल से तारीफ़ करते हैं। यहां तक कि श्प्रेंङ्गर नामी एक विद्वान, जो यूरोप के सब से ऊंचे पहाड़ अल्प्स का रहने वाला था, लिखता है कि अल्प्स या हिमालय दोनों में से किसी की आबोहवा इतनी ज्यादह ताक़त और जीवन देने वाली नहीं है जितनी अरब के रेगिस्तान की।[1] कहा जाता है कि सिकन्दर ने अरब की आबहवा से ख़ुश होकर हिन्दुस्तान से

1 "Mohammad and Mohammadanism" by R. Bosworth Smith, P. 87.

लौटने पर अरब को जीतने और वहीं अपनी राजधानी क़ायम करने का इरादा किया था लेकिन मौत ने उसे वहां तक पहुँचने न दिया। [२]

---

2 Sale's Preliminary Discourse, P. 2.

अरबों का रहन सहन



मोहम्मद साहब के जीवन और उनके कामों को बयान करने से पहले यह ज़रूरी है कि हम उनसे ठीक पहले के अरबों की हालत और उनके चलन पर भी एक निगाह डाल लें।

मोहम्मद साहब से पहले इस बात का पता नहीं चलता कि उस सारे देश पर कभी भी किसी एक राजा की हकूमत रही हो।

कई छोटी छोटी बादशाहतें देश के अलग अलग हिस्सों में कभी कभी क़ायम हुईं और छठी सदी में भी मौजूद थीं। इनमें से कई बादशाहतें कई कई सदी तक रहीं। इनमें कोई कोई बिल्कुल आज़ाद होती थीं और कोई पास के किसी विदेशी राज के मातहत होती थीं। लेकिन सारा अरब छठी सदी से पहले कभी किसी एक देशी या विदेशी ताक़त के क़ब्ज़े में नहीं रहा। इसी लिये राजकाज के ख़याल से उस से पहले अरब को एक राज या एक क़ौम नहीं कहा जा सकता था।

अरब और ख़ास कर अरब का वह बीच का हिस्सा जिसे हेजाज़ कहते हैं, जिसमें मक्का और मदीना के मशहूर शहर हैं

और जो सदियों से किसी एक राजा या हाकिम के मातहत न रहा था, मोहम्मद साहब के वक्त तक सैकड़ों क़बीलों में बंटा हुआ था, जिसमें से एक एक क़बीले की कई कई शाखें और उनमें कभी कभी सैकड़ों घराने और कई कई हज़ार मर्द, औरत और बच्चे मिलकर एक बहुत बड़े कुनबे की तरह रहते थे। हर कुनबे के सब नर नारी आपस में प्रेम और भाईचारे की डोरी में बंधे रहते थे। सब एक दूसरे का बचाव करना अपना फ़र्ज़ समझते थे। एक दूसरे के लिये बड़ी से बड़ी क़ुरबानी करने में अपना बड़प्पन मानते थे। क़बीले के अन्दर सब की चीज़ें खुली पड़ी रहती थीं और कभी चोरी न होती थी। क़बीले के लोगों में से किसी एक की बेइज़्ज़ती सारे क़बीले की बेइज़्ज़ती समझी जाती थी, और क़बीले की आन का ख़याल इन लोगों में इतना बढ़ा हुआ था कि इनकी सब आपस की लड़ाइयों या उनकी सुलह की वही जड़ बुनियाद होती थी।

हर क़बीले का एक सरदार होता था जिसे 'शेख़' कहते थे। क़बीले के सब कुटुम्बों के मुखियों की राय से शेख़ का चुनाव होता था। शेख़ ही अपने क़बीले का हाकिम, क़बीले के नौजवानों का जरनैल और धर्म के मामलों में सारे क़बीले का गुरु और पुरोहित होता था।

हर क़बीले में आपस का प्रेम, क़बीले की आन का ख़याल, सरदार का कहना मानना, ये सब भलाइयां इन लोगों में मौजूद थीं। बाहर वालों या दूसरे क़बीले वालों के साथ में भी अपने बचन

को पूरा करने, मेहमान की ख़ातिर करने और जिस की बांह पकड़ली उस के साथ टेक निबाहने में अरब हमेशा से मशहूर थे। अलग अलग क़बीलों के लोगों के रहन सहन, उनके रस्म रिवाज, उनकी बोली और उनके मज़हबी ख़याल भी काफ़ी मिलते जुलते थे। लेकिन ये सब क़बीले न किसी एक डोरी में बंधे हुए थे और न इन सब का कोई एक राजा था।

इतना ही नहीं, बल्कि सारे हेजाज़ में और एक दरजे तक सारे अरब में इन अनगिनत क़बीलों की एक दूसरे के साथ आए दिन लड़ाइयां होती रहती थीं। इन लड़ाइयों का एक सबब यह था कि हर क़बीले को अपनी नसल के बड़प्पन का बेहद घमण्ड था और अगर किसी क़बीले के एक आदमी ने दूसरे क़बीले के किसी आदमी के सामने अपनी नसल की बड़ाई का बखान कर दिया और दूसरे से न सहा गया तो दोनों तरफ़ से तलवारें खिंच जाती थीं। दूसरा सबब इससे मिलता जुलता यह था कि अगर एक क़बीले के किसी आदमी ने दूसरे क़बीले के किसी आदमी की बेइज़्ज़ती कर दी या उसे मार डाला—और ये आए दिन की बातें थीं—तो फिर सारे क़बीले की तरफ़ से बदला और फिर बदले का बदला कई कई पीढ़ियों और कभी कभी कई कई सदियों तक जारी रहता था, जिसमें दोनों तरफ़ से सैकड़ों जानें जाती थीं।

उस ज़माने के अरब यह मानते थे कि जब कोई आदमी मार डाला जाता है तो उसकी आत्मा एक चिड़िया बन कर

बरसों उसकी क़ब्र के आस पास मंडराती रहती है, और "औस्क़ूनी! औस्क़ूनी!" चिल्लाती रहती है, जिसका मतलब है—"मुझे पीने को दो! मुझे पीने को दो! और जब तक मारने वाले का न उसे पीने को ख़ून मिले और हत्या का बदला न लिया जावे, तब तक वह इसी तरह चिल्लाती रहती है। इसी लिये अपने क़बीले के किसी आदमी या किसी पुरखे की हत्या का बदला लेना हर अरब अपना धर्म समझता था।

इन घरेलू लड़ाइयों में जो मर्द औरत या बच्चे क़ैद कर लिये जाते थे वे ग़ुलामों की तरह रखे जाते थे। ग़ुलामों के साथ इन लोगों का सलूक बहुत ही बुरा था। जानवरों की तरह बाज़ारों में वह बेचे जाते थे। किसी ग़ुलाम को मार डालने की कहीं कोई सज़ा न थी। ग़ुलाम औरतों को अकसर नाचना गाना सिखाया जाता था और फिर उनके साथ बाज़ारी औरतों जैसा बर्ताव होता था और कभी कभी इनका मालिक उनसे पेशा करा कर पैसा कमाता था।

ऐसी हालत में अलग अलग क़बीलों में प्रेम, मेल या एके की आस करना और भी कठिन था।

औरतों के साथ तब के अरबों का बर्ताव बहुत ख़राब था। पुराने राजपूतों की तरह उस ज़माने के अरब किसी को अपना दामाद मानना, या लड़की का बाप होना अपने लिये बहुत बड़ी शर्म की बात समझते थे। लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ देने का

रिवाज आम था। कहीं कहीं तो जब किसी औरत के बच्चा होने को होता था तो वहीं उसके पास एक गढ़ा खोद दिया जाता था। अगर लड़का पैदा हुआ तो उस गढ़े को योंही पूर दिया जाता था, और अगर लड़की हुई तो उसे उसी गढ़े में डालकर ऊपर से मिट्टी भर दी जाती थी। कहीं कहीं जब लड़की पांच छै बरस की हो जाती थी तो एक दिन उसका बाप उसकी माँ से आकर कहता था,—"अपनी बेटी को नए नए कपड़े पहना कर उसे ख़ुशबू लगा दो तो मैं उसे उसकी माँओं के पास पहुँचा आऊं।" इसके बाद वह लड़की को आबादी से बाहर एक गढ़े तक लेजाता था। लड़की को गढ़े के सिरेपर खड़ा कर नीचे झांकने को कहता था और फिर अचानक उसे धक्का देकर गढ़े में ढकेल देता था और अपने हाथ से मिट्टी पूर देता था। अरबों में उन दिनों एक कहावत मशहूर थी कि—"सबसे अच्छा दामाद क़ब्र है।"

मालूम होता है कि इस रिवाज का तीखापन कभी कभी अरबों के दिलों में भी चुभन पैदा कर देता था। कहा जाता है कि एक अरब उसमान नामी की आंखों से ज़िन्दगी भर में सिर्फ़ एक बार आंसू टपकते हुए दिखाई दिये, जब कि उसकी उस भोली भाली लड़की ने जिसे वह ज़िन्दा गाड़ने के लिये ले गया था अपने बाप की दाढ़ी पर गढ़े की गर्द लगी देखकर उसे अपने नन्हे हाथों से पोंछना चाहा था।

मां बाप की जायदाद में लड़कियों का कोई हिस्सा न रहता था। बल्कि जब कोई आदमी मरता था तो उसकी और सब मिलकीयत के साथ साथ उसकी बीवियां भी उसके वारिस की मिलकीयत मानी जाती थीं। इस बुरे रिवाज के सबब सौतेली माँओं के साथ शादी का उन दिनों अरबों में रिवाज मौजूद था। एक आदमी की एक साथ कई कई बीवियां और एक औरत के एक साथ कई कई मर्द ये दोनों रिवाज भी थे। और इनकी तादाद की कोई रोक थाम न थी। शादी के तरह तरह के रिवाज थे। ब्याह का बंन्धन धर्म का बन्धन न माना जाता था। आदमी जब चाहे अपनी औरत को तलाक़ दे सकता या छोड़ सकता था। इस तरह छोड़ी हुई औरत किसी दूसरे के साथ ब्याह कर सकती थी। एक औरत उम्म ख़रीजा का ज़िक्र इन दिनों मिलता है जिसने एक दूसरे के बाद चालीस आदमियों के साथ ब्याह किया। आम बदचलनी को ये लोग अपने लिये एक घमण्ड की चीज़ समझते थे और अपनी बद-चलनियों का बेशर्मी के साथ खुले बखान करते थे।

खजूर के दरख़्तों की अरब में कमी न थी। इस लिये शराब का रिवाज इतना बढ़ा हुआ था कि बहुत शराब पीने से लोगों की अकसर मौतें हो जाती थीं। जुए और शराब का जोड़ है ही। कोई कोई अरब जुए में अपना सब कुछ हारने के बाद अपने जिस्म तक की बाज़ी लगा देते थे और अगर हार जाते थे तो हमेशा के लिये जीतने वाले के ग़ुलाम हो जाते थे।

मक्का और उसके आस पास के कुछ क़बीले सैकड़ों बरस से तिजारत करते आते थे और इसी से अपना पेट पालते थे। मदीना और कुछ दूसरी जगह के लोग थोड़ी बहुत खेती बाड़ी भी करते थे। हेजाज़ से बाहर के कुछ हिस्सों में भी कहीं कहीं तिजारत या खेती बाड़ी होती थी। लेकिन अरबों का आम धन्धा सिर्फ़ ऊंट, बकरियाँ और घोड़े वग़ैरह चराना था। दूसरे क़बीले वालों को या रेगिस्तान से जाते हुए तिजारती क़ाफ़लों को लूट लेना ये लोग अपना हक़ समझते थे। दो चार शहरों को छोड़ कर बाक़ी क़रीब क़रीब सारे अरब के लोग उठाऊ चूल्हों की तरह ख़ेमों में रहते थे। मौसम बदलने के साथ साथ या पानी का आराम देख कर ये लोग अपनी जगह बदलते रहते थे। खेती करके एक जगह जम कर रहने या तिजारत करने को ये बुरा समझते थे। इस तरह के जीवन में किसी तरह की कारीगरी या धन्धे तरक़्क़ी कर ही नहीं सकते। लेकिन इस तरह के जीवन और आए दिन की लड़ाइयों ही के सबब ये लोग आम तौर पर बड़े बहादुर और अपने घोड़ों की तरह फ़ुरतीले होते थे और इनका रहन सहन बेहद सादा होता था।

मालूम होता है शुरू से ही इन्हें यह बात भी खटक गई थी कि आए दिन की लड़ाइयों और लूट मार में कुछ दिन ऐसे भी होने चाहियें जब वे अपनी घरेलू लड़ाइयों को कुछ अरसे के लिये बन्द कर उतने अरसे तक निडर और बेफ़िकर होकर एक दूसरे के साथ मिल बैठ सकें। मोहम्मद साहब के बहुत पहले से

साल में चार महीने इस बात के लिये छुटे हुए थे कि उन चार महीनों में सब क़बीलों के आपस के झगड़े, हत्या के बदले और लूट मार बिलकुल बन्द रहा करें। आमतौर पर सब क़बीलों के लोग इस बात को ईमानदारी के साथ मानते और निबाहते थे।

इन चार महीनों के अन्दर ही अरब के सब लोग मक्का आकर काबे की यात्रा करते थे, जो मोहम्मद साहब से हज़ारों साल पहले से तमाम अरबों का सब से बड़ा मन्दिर और सब से बड़ा तीर्थ माना जाता था। इन चार महीनों के अन्दर ही उक्काज़ और मुजन्ना के दो मशहूर मेले होते थे जिनमें तमाम क़बीलों के लोग जमा होकर, कहीं अपने अपने लड़ाई के क़ैदियों का बदलाव करते थे, कहीं माल ख़रीदते बेचते थे, कहीं अपने देवताओं की पूजा करते थे और कहीं छोटे मोटे मुशायरे (कवि सम्मेलन) करते थे। लिखने का रिवाज अरबों में मोहम्मद साहब के पहले बहुत कम था, फिर भी शायरी करने का उन्हें शुरू से बड़ा चाव था। हर क़बीले में ऐसे शायर या तुरत कवि होते थे जिनकी छोटी छोटी कविताएं या तुक बन्दियां सैकड़ों साल तक एक से दूसरे को ज़बानी पहुँचती रहती थीं। इस तरह के आज़ाद और लड़ाका लोगों के लिये चार महीने तक अपने दुशमनों, अपने बाप, बेटे या भाई के हत्यारों, को सामने से निकलते देखते रहना और अपने ग़ुस्से को क़ाबू में रखना, जबकि कोई दूसरा उन्हें रोकने दबाने या सज़ा देने वाला

नहीं था, यह बताता है कि अरबों में अपने आपको रोकने और वचन निबाहने की ताक़त मौजूद थी। लेकिन साथ ही चार महीने की रोक थाम इस बात को भी ज़ाहिर करती है कि बाक़ी आठ महीनों में क्या हालत रहती होगी, और इसमें शक नहीं कि इन चार महीनों की रोक थाम के सबब आठ महीने तक लड़ाइयों और बदले की आग और भी ज़ोरों के साथ भड़कती होगी।

अरबों का धर्म

धर्म के मामले में भी उन दिनों अरबों के दिल बहुत छोटे और उनके ख़याल बहुत तंग थे। जो धर्म देश में जारी थे उन्हों ने देश की हालत को और भी बिगाड़ रखा था। इनमें तीन ख़ास थे—पुराना अरब धर्म, यहूदी धर्म और ईसाई धर्म। ईरान और वहां के ज़रथुस्त्री धर्म के साथ भी अरबों का सदियों से लगाव था, उनकी ज़िन्दगी पर उसका तरह तरह से असर भी था। लेकिन अरबों ने बहुत ज्यादह तादाद में कभी उस धर्म को नहीं माना। कुछ लोग 'साबी' धर्म के भी मानने वाले थे जो एक परमेश्वर को मानते हुए भी सितारों वग़ैरह की पूजा करते थे।

थोड़े से क़बीलों को छोड़कर जिन्होंने यहूदी या ईसाई वगै़रह धर्म अपना लिये थे बाक़ी सब अरब अपने पुराने धर्म को ही मानते थे। दुनिया के और पुराने लोगों की तरह वे बहुत से देवी देवताओं को मानते और उन्हीं की पूजा करते थे।

हर क़बीले का अपना एक अलग देवता होता था, कोई लकड़ी का, कोई पत्थर का, कोई पीतल का, कोई तांबे का और

कोई गुंदे हुए आटे का। किसी देवता की शक्ल आदमी की होती थी, किसी की औरत की, किसी की किसी जानवर की, किसी की पेड़ की, और कोई बिलकुल अनगढ़ था। जब दो क़बीलों में लड़ाई होती थी तो वह उनके देवताओं की भी लड़ाई समझी जाती थीं और कभी कभी ये लोग आदमियों की तरह दूसरों के देवता को भी क़ैद करके ले आते थे। देश भर में इन अनगिनत देवी देवताओं की पूजा ठीक उसी तरह होती थी जिस तरह दुनिया की दूसरी पुरानी क़ौमों में। इन देवताओं के सामने जानवरों की बलि (क़ुरबानी) भी दी जाती थी। किसी किसी देवता के सामने आदमी की भी बलि दी जाती थी। और कोई कोई तो अपने हाथ से अपने बेटों को काट कर अपने देवताओं के सामने चढ़ा देते थे। बहुत से ऐसे देवता भी थे जिन्हें कई कई क़बीले या क़रीब क़रीब सब अरब मानते और पूजते थे। इनमें सबसे मशहूर तीन देवियाँ थीं जिनके नाम 'लात' 'उज्ज़ा' और 'मनात' थे। इनके अलग अलग मन्दिर थे। इसी तरह के और भी कई देवी देवताओं के नाम उस ज़माने की किताबों में मिलते हैं। काबे के अन्दर भी साल के ३६० दिन के ३६० देवता थे जिनमें सब से बड़ा 'होबल' नाम का एक देवता था। इन देवताओं के अलावा हज़ारों अरब सूरज, चांद और कई ख़ास ख़ास तारों की भी पूजा करते थे, जिनसे उन्हें दिनमें गरमी मिलती थी और रात को रास्ते का पता चलता था।

इन हज़ारों देवी देवताओं के अलावा सब के मालिक एक परमात्मा के मन्दिर का कहीं ज़िक्र नहीं आता। ज़्यादहतर अरबों का ख़याल इन देवी देवताओं से ऊपर न उठ सकता था। लेकिन इस बात का भी पता चलता है कि उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो सब देवताओं से ऊपर सब के मालिक एक परमात्मा को भी मानते थे, जिसे वे 'अल्लाह ताला' कहते थे और यह मानते थे कि उनके अपने देवी देवता उसी 'अल्लाह ताला' के नीचे दुनिया का सारा काम चलाते हैं और परलोक (दूसरी दुनिया) में अपने पूजने वालों की अल्लाह ताला से सिफ़ारिश कर सकते हैं।

कुछ अरबों में एक रिवाज यह भी था कि जब कोई आदमी मरता था तो एक ऊंटनी उसकी क़ब्र के पास बांध दी जाती थी। उसे वहीं बिना दाना पानी मरने दिया जाता था, जिससे मरने वाले को परलोक में सवारी की दिक़्क़त न हो। इस ऊंटनी को वे 'बलियह' कहते थे।

थोड़े से में यही अरबों का पुराना धर्म था।

अब रहे यहूदी और ईसाई धर्म। ये दोनों भी मोहम्मद साहब से सदियों पहले अरब पहुंच चुके थे।

ईसा की पहली सदी में रोम के सम्राट (शहनशाह) टाइटस ने यहूदियों को फ़िलस्तीन से निकाल दिया था। इसी तरह तीसरी सदी में बहुत से ईसाई आपसी झगड़ों की वजह से शाम (सीरिया) और दूसरे मुल्कों से निकाले जा चुके थे।

अरब के लोग इस मामले में बड़े दिल वाले थे। वे अपने यहां सब धर्म वालों को ख़ुशी से आने देते थे। हज़ारों यहूदी और ईसाई अरब में आकर बस गए। एशिया के इन दोनों धर्मों का जन्म भी अरब की उत्तर की सरहद पर हुआ था। ये दोनों धर्म भी थोड़े बहुत अरब में फैले। कुछ क़बीलों ने इस धर्म को और कुछ ने उस धर्म को अपना लिया।

मालूम होता है दूसरे धर्मों के देवी देवताओं को अपने देवी देवताओं में शामिल कर लेने का भी अरबों में रिवाज था। जिन अरबों ने इन नए धर्मों में से किसी एक को पूरी तरह नहीं अपनाया वे भी इन दोनों के साथ काफ़ी अपनापन जताते थे। बहुत से अरब हज़रत इबराहीम को जिन्हें यहूदी और ईसाई दोनों पैग़म्बर मानते थे, अपना ही पुरखा बताते थे और इबराहीम के बेटे इसमाईल से अपना निकास बताते थे। काबे में दूसरी मूर्तियों के साथ साथ इबराहीम और इसमाईल के भी बुत मौजूद थे, और उनकी भी पूजा होती थी। ईसाइयों के पहुंचने के बाद हज़रत ईसा की माँ मरियम की एक मूर्ति भी काबे में रख ली गई और उसकी भी पूजा होने लगी। लेकिन यहूदी लोग उन दिनों इतने घमण्डी और तंग ख़याल होते थे और ईसाई धर्म इतनी गिरी हुई हालत को पहुंच चुका था और साथ ही इन दोनों धर्मों में आपसी लाग डाट इतनी बढ़ी हुई थी कि इनका असर अरबों के जीवन पर अच्छा न पड़ सका।

इन दोनों में से कोई इस बात को मानने के लिये तय्यार न था कि उसके अपने मत या जत्थे से बाहर किसी भी आदमी की, चाहे वह कितना ही नेक क्यों न हो, मरने के बाद अच्छी हालत हो सकती है।

यहूदी एक ईश्वर और बहुत से पैग़म्बरों के अलावा एज़रा को ख़ुदा का बेटा मानते थे। छुआछूत, खानेपीने के फ़रक़ और निराले क़ायदों में अगर दुनिया के किसी मज़हब के रिवाज आजकल के हिन्दू रिवाजों से मिलते हैं तो वह पुराने यहूदी धर्म के। दूसरे सब धर्मों के लोगों को वे अपने से नीचा और नापाक मानते थे, उनकी छुई हुई कोई चीज न खाते थे, न उनका छुआ पानी पीते थे, और न उन्हें अपने यहां खिला-पिला या इज्ज़त से बैठा सकते थे। यही यहूदियों की सब से ख़ास बात थी। उनके रस्म रिवाज और पूजा के तरीक़े बड़े पेचीदा थे। इन बातों को छोड़ कर अगर उनमें कोई और ख़ास बात थी तो वह साहूकारे और सूदख़ोरी से पैसा कमाना, पैसा जमा करना और इस तरह की कंजूसी बरतना जो बेपैसे-वाले पर दिलवाले रेगिस्तानी अरबों को कभी पसन्द न आ सकती थी।

ईसाई धर्म यहूदी धर्म के बाद का था, और उन दिनों के लिए ज्यादह ठीक था। यह ईसाई धर्म इसीलिए दुनिया में आया था कि यहूदियों में जो निकम्मे और बेमाइने रस्म रिवाज चल पड़े थे, और लकीर की फ़कीरी बढ़ती जा रही थी, उसे खत्म

करके लोगों के दिलों को धर्म की फ़िज़ूल रस्मों से हटाकर उन्हें एक दूसरे की सेवा और भलाई के कामों की तरफ़ लगाया जावे। शुरू में ईसाई धर्म यहूदी धर्म ही की एक शाख़ समझा जाता था और यहूदी धर्म का सुधार उसकी ग़रज़ थी। लेकिन मोहम्मद साहब के जन्म तक ईसाई धर्म की जो गति हो चुकी थी वह यहूदी धर्म की उन दिनों की हालत से किसी तरह कम बुरी न थी।

हज़रत ईसा के कुछ दिनों बाद से ही ईसाई लोग एक तरह की त्रिमूर्ति (Trinity, तसलीस) की पूजा करने लगे थे। इस त्रिमूर्ति में आम तौर पर बाप (ईश्वर), बेटा (ईसा) और पवित्रात्मा (वह मानी हुई रूह जिसके ज़रिये कहा जाता था कि हज़रत ईसा की माँ कुमारी मरियम को पेट रहा था) ये तीन गिने जाते थे। लेकिन कुछ लोग ईश्वर, ईसा और मरियम की भी त्रिमूर्ति मानते थे। ईसाई मत की जो शाख़ (कॉलीरीडियन्स) अरब में ज्यादह फैली हुई थी वह ईश्वर, मरियम और ईसा की ही त्रिमूर्ति मानती थी।

ईसाई गिरजे ईसा, मरियम, सैकड़ों सन्तों, फ़रिश्तों और ईसाई शहीदों के बुतों से भरे रहते थे। मरियम को 'ईश्वर की माँ' कह कर उसकी पूजा की जाती थी। ईश्वर, ईसा और मरियम तीनों एक बराबर माने जाते थे और इनके साथ साथ बहुत से ईसाई सन्तों को भी इन्हीं की तरह सब जगह मौजूद, सब कुछ जानने वाले और जो चाहे कर सकने वाले माना जाता

था। इन सब क बुता क सामने मन्नतें मानी जाती थीं और चढ़ावे चढ़ाए जाते थे। यही उस ज़माने के ईसाइयों की रोज़ की पूजा थी।

वहमों की यह हालत थी कि यरुसलम शहर में लकड़ी का वह क्रूश (सलीब) अभी तक दिखाया जाता था जिस पर, कहा जाता था कि, महात्मा ईसा को सूली दी गई थी। इस छोटे से क्रूश की सूखी लकड़ी बराबर बढ़ती रहती थी। हर ईसाई यात्री यरुसलम से लौटते हुए उस क्रूश का एक टुकड़ा अपने साथ ले आता था। आम आदमी उस टुकड़े को अपने घरों में रख कर उसकी पूजा करते थे और हज़ारों टुकड़े दुनिया भर के गिरजों में रखकर पूजें जाते थे। यरुसलम के पादरियों के लिये यह काफ़ी आमदनी का ज़रिया था। लिखा है कि धीरे धीरे सिर्फ़ यूरोप ही के हज़ारों गिरजों में इस क्रूश से इतनी लकड़ी जमा हो गई कि उससे सैकड़ों नए क्रूश तय्यार हो सकते थे। लोगों को यक़ीन था कि इस क्रूश की लकड़ी तरह तरह की करामात कर सकती थी और सब बीमारियों को अच्छा कर सकती थी। इसी तरह मरियम और ईसाई सन्तों की मूर्तियों से भी हर गिरजे में सैकड़ों करामातें होती आये दिन दिखाई जाती थीं।

दुनिया में ईसाई राज की सब से बड़ी जगह उन दिनों रोम के सम्राट (शहनशाह) की राजधानी, क़ुस्तुनतुनिया थी। क़ुस्तुनतुनिया, सिकन्दरिया और रोम इन तीन शहरों

के लाट-पादरी (बिशप) ईसाई धर्म के सबसे बड़े महन्त गिने जाते थे। इन लाट-पादरियों की राय से क़ुस्तुनतुनिया के सम्राट की तरफ़ से सारी दुनिया के ईसाइयों के नाम यह हुकुम जारी कर दिया गया था कि किसी भी बीमारी में दवाओं से इलाज करना, जैसा पुराने यूनानी करते थे, ईश्वर से इनकार करना है और पाप है, और ईसाइयों को इलाज के लिये गिरजे के बुतों और पादरियों के पास जाकर दुआएं मांगना चाहिये और इनसे झाड़ फूंक और गण्डे तावीज़ कराना चाहिये। रोम के ईसाई सम्राटों का जहां जहां हुकुम चलता था वहां वहां दवाओं से किसी का इलाज करने वाले वैद्य हकीम तक को मौत की सज़ा दी जाती थी।

ईसाई पादरियों में इस तरह की बातों पर लम्बी लम्बी बहसें होती थीं, जो कभी कभी पीढ़ियों चलती थीं, कि हज़रत ईसा में ईश्वर का हिस्सा कितना था, जैसे ईश्वर अजर अमर है यानी न कभी बूढ़ा होता है न मरता है, ऐसे ही हज़रत ईसा अजर और अमर हैं या नहीं, मरियम को 'ईसा की माँ' कहना चाहिये या 'ईश्वर की माँ' और अगर हज़रत आदम गुनाह न करते तो कभी मरते या न मरते ? इन्हीं बातों को लेकर बहुत से अलग अलग दल खड़े हो गए। जब जिस दल का ज़ोर होता था या क़ुस्तुनतुनिया के सम्राट की तरफ़ से जिसे ठीक मान लिया जाता था, उसके ख़िलाफ़ दल वालों को अधर्मी (हेरेटिक)

कह कर देश निकाला, तरह तरह की तकलीफ़ें और मौत की सज़ा तक झेलनी पड़ती थी।

सिकन्दरिया के एक विद्वान पादरी एरियस को सिर्फ़ इस बात पर देश निकाले की सज़ा दी गयी कि एरियस कहता था कि,—"हज़रत ईसा ईश्वर के बेटे हैं, इस लिए एक ज़माना ऐसा ज़रूर था जब ईश्वर था लेकिन हज़रत ईसा नहीं थे, इसीलिये हज़रत ईसा को ईश्वर के बराबर नहीं माना जा सकता," इसी गुनाह में पहले एरियस को देश निकाले की और फिर आख़ीर में मौत की सज़ा झेलनी पड़ी। रोम के सारे राज में यह हुकुम जारी कर दिया गया कि जिस किसी को एरियस की कोई किताब कहीं से मिल जावे, वह अगर उस किताब को तुरत जला न डाले तो उस आदमी ही को मार डाला जावे।

एक विद्वान ईसाई साधु पिलेगियस ने सिर्फ़ यह कह दिया था कि—"आदम पैदा हुए थे तो गुनाह करते या न करते मरते ज़रूर, जन्म से सब आदमी आदम ही की तरह बेगुनाह होते हैं, सब अपने अपने भले बुरे कामों का फल पाते हैं, आदम के कामों का नहीं, और पापों को धोने के लिये नेक कामों की ज़रूरत है, सिर्फ़ बपतिस्मे के पानी से पाप नहीं धुल सकते," इतने ही पर पिलेगियस की और उन सब लोगों की जो पिलेगियस की राय को ठीक कहते थे, जायदादें ज़ब्त करके उन सब को रोम के राज से बाहर निकाल दिया गया।

शाम के एक मशहूर पादरी नेस्तोरियस ने कहा कि मरियम को 'ख़ुदा की माँ' कहना ठीक नहीं 'हज़रत ईसा की माँ' कहना चाहिये। तुरत ईसाई महन्तों में दो दल हो गए। पहले बहसें हुईं, फिर बलवे और बाद में ख़ूब ख़ून बहा। आख़िर 'ख़ुदा की माँ' वाला दल जीता। नेस्तोरियस को रोम के सम्राट के हुकुम से पहले देश निकाला देकर अफ़रीका भेज दिया गया और फिर वहां मौत से पहले उसकी "नापाक ज़बान" काट डाली गई।

यूरोप का एक विद्वान लिखता है—

"इन झगड़ों की वजह से बड़े बड़े नगरों में ख़ूब हत्याएं होती रहती थीं और ख़ून बहता रहता था। छोटे बड़े सब लोगों में बेईमानी और बदचलनी बढ़ी हुई थी। इससे साफ़ ज़ाहिर था कि राज के साथ मिलकर ईसाई धर्म इतना गिर गया था कि अब वह लोगों के दिलों को रोक कर उन्हें बुराई से न बचा सकता था। धर्म का जीवन मिट चुका था, उसकी जगह धर्म के असूलों पर बहसें रह गई थीं और ये बहसें भी पागलों की बहसें थीं।*"

मोहम्मद साहब के जन्म के दिनों के ईसाई मत और लोगों के जीवन पर उसके असर इन दोनों को बयान करते हुए वही विद्वान आगे लिखता है,—

---

* "A History of Intellectual Development of Europe", by J. W. Draper, Vol. I, P. 289.

"आदमी की नेकी या बदी का कोई खयाल नहीं किया जाता था। आदमी के पाप उसके बुरे कामों से नहीं नापे जाते थे बल्कि इससे नापे जाते थे कि वह ईसाई धर्म के माने हुए असूलों में से किससे कितना इनकार करता है। रोम, क़ुस्तुनतुनिया और सिकन्दरिया के पादरी जी तोड़ कर एक दूसरे से बढ़ने की कोशिशों में लगे हुए थे और इस तरह के हथियारों और ज़रियों से अपना मतलब पूरा करते थे जो आदमी के दिलको गंदे और डरावने मालूम होते हैं। जबकि पादरी लोग खुद छिपकर हत्याएं कराने, ज़हर देने, बदचलनी करने, आंखें निकलवा लेने, दंगे करा देने, बलवे करा देने और आपसी मारकाट में लगे हुए थे, जब कि पादरी और लाट-पादरी (बिशप और आर्क बिशप) दुनयवी ताक़त के फेर में एक दूसरे को अधर्मी कह कर सज़ाएं दे रहे थे, राज दरबारों के खवासों को रिशवतें देने में सोना लुटा रहे थे और महलों की औरतों को अपने गन्दे प्रेम से जीतने की कोशिशें करते रहते थे, तो आम लोगों से क्या उम्मीद हो सकती थी ?... ईसाई महन्तों की फ़ौजें जब कभी सम्राट की फ़ौजों में जा मिलती थीं तो उन्हें घबरा देती थीं और अगर बड़े नगरों में जाती थीं तो वहां मज़हबी दंगे करा देती थीं, धर्म के ऊंचे ऊंचे असूलों को तय करने के लिये वे बहुत शोर ग़ुल करती थीं, लेकिन सोचने की आज़ादी के लिये या आदमी के छीने हुए हक़ के लिये कभी कोई आवाज़ न उठती थी। ऐसी सूरत में लोगों के अन्दर सिवाय नफ़रत और

बेबसी बढ़ने के और क्या हो सकता था ? सचमुच लोगों से यह उम्मीद न की जा सकती थी कि ज़रूरत पड़ने पर वे एक ऐसे धर्म की मदद करेंगे जिसका असर उनके दिलों पर से बिलकुल उठ चुका था।*"

यही वजह थी कि मोहम्मद साहब की जिन्दगी में, सन् ६११ ईसवी में, जब ईरान के ज़रथुस्त्री बादशाह ने रोम के फैले हुए राज पर हमला किया तो नाख़ुश ईसाई पादरियों और ईसाई प्रजा में से बहुतसों ने जगह जगह उन विदेशी हमला करने वालों का साथ दिया जो एक ग़ैर ईसाई धर्म के मानने वाले थे।

इस तरह के धर्म और इस तरह के महन्तों से भोले भाले अरबों के अन्दर किसी तरह के सुधार की उम्मीद करना बेकार था, न इन लोगों से अरबों की कोई भलाई हो सकती थी। सुधार और भलाई की जगह यहूदियों और ईसाइयों की आपसी दुशमनी और लाग डाट से अरबों के जीवन को और उनकी आज़ादी को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा।

दूसरे धर्मों से नफ़रत करने में ईसाई और यहूदी दोनों एक दूसरे से बढ़े चढ़े थे। पांचवीं सदी के आख़ीर में, अरब के एक हिस्से, यमन के एक यहूदी हाकिम यूसुफ़ ज़ुनवास ने उन सब लोगों और ख़ासकर ईसाई अरबों को जो यहूदी मत मानने से

* Ibid, Vol. I, P. 332-33.

इनकार करते थे तकलीफ़ें दे दे कर मार डालना शुरू किया। इसमें उसका एक ख़ास तरीक़ा उन्हें धधकती हुई आग में फेंक कर ज़िन्दा जला देना था। यमन में उन दिनों ईसाई भी काफ़ी थे। यहूदियों की कोई सल्तनत अरब से बाहर न थी लेकिन ईसाइयों की एक ज़बरदस्त हकूमत यमन से थोड़ी ही दूर लाल समुद्र के उस पार इथियोपिया में मौजूद थी। यमन के ईसाइयों ने यहूदियों के ख़िलाफ़ इथियोपिया के ईसाई बादशाह के साथ साज़िश की। इथियोपिया के बादशाह ने फ़ौज भेजकर ज़ुनवास को मरवा डाला और यमन के सारे सूबे पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह बात मोहम्मद साहब के जन्म से सिर्फ़ सत्तर साल पहले की है। यमन का सूबा मक्के से दक्खिन में है। यह अरब का सबसे ज्यादह पैदावार वाला और सब से ज्यादह हरा भरा सूबा है और लाल समुद्र से ईरान की खाड़ी तक फैला हुआ है। इस तरह इन दोनों धर्मों की आपसी लाग डाट की वजह से अरब के दक्खिन और पूरब का बहुत बड़ा हिस्सा विदेशियों के हाथ में आगया और सन् ६१० ईसवी तक एक दूसरे के बाद चार विदेशी हाकिम उस पर हकूमत करते रहे।

नीचे की बात से यहूदियों और ईसाइयों के आपसी झगड़ों का कुछ और पता चलता है। ईसाइयों की किताबों में लिखा है कि एक बार तीन दिन तक ईसाइयों के पादरियों और यहूदियों के पुरोहितों में बहस होती रही। आख़िर में यहूदियों ने कहा—"अगर तुम्हारा ईसा मसीह सचमुच आसमान पर ज़िन्दा

है तो वहां से उतर कर हमें इसी वक्त दिखाई दे, हम तुम्हारा धर्म मान लेंगे।" इस पर उसी दम बादल गरजे, बिजली कड़की और एक लाल बादल के ऊपर हज़रत ईसा दिखाई दिये। उनके सिर पर मुकुट था और हाथ में नंगी तलवार। उन्हों ने आते ही यहूदियों से कहा—"देखो, मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, मैं, जिसे तुम्हारे पुरखों ने सूली पर चढ़ा दिया था।" देखते ही यहूदी सब अन्धे हो गए और फिर उस वक्त तक उनकी आंखें न खुलीं जब तक उन्हों ने ईसाई धर्म न मान लिया।

इस मामले का असली रूप चाहे कुछ भी रहा हो लेकिन यह उन दिनों के यहूदियों और ईसाइयों के आपस के झगड़ों और उन ईसाइयों की धर्म की सूझ बूझ की खासी अच्छी तसवीर खींचता है जो हज़रत ईसा के हाथ में भी नंगी तलवार दे सकते थे।

ग़ैरों की हकूमत

धर्म के नाम पर इस तरह के अन्धेर और देश की इस तरह की हालत का देश की आज़ादी पर बुरा असर पड़ना ज़रूरी था। अभी कहा-जा चुका है कि मोहम्मद साहब के जन्म से सिर्फ़ सत्तर साल पहले यमन के हरे भरे सूबे पर इथियोपिया के ईसाई बादशाह ने क़ब्ज़ा कर लिया था। उत्तर और पच्छिम में रोम के राज और पूरब में ईरान की बादशाहत से भी अरब की सरहद मिली हुई थी और इन दोनों विदेशी हकूमतों ने अपने अपने पास के अरब इलाक़ों पर क़ब्ज़ा कर रखा था। मिरज़ा अबुल फ़ज़ल लिखते हैं—

"मोहम्मद साहब की पैदाइश के वक्त अरब का ज्यादह हिस्सा विदेशियों के हाथों में था। शाम और ईरान की सरहद से मिले हुए सूबे क़ुस्तुनतुनिया के रोमी सम्राटों और ईरान के ख़ुसरो के क़ब्ज़े में थे। मक्के के दक्खिन में लाल समुद्र के किनारे का हिस्सा इथियोपिया के ईसाई बादशाहों के मातहत था। लेकिन 'हेजाज़' का इलाक़ा जिसका मतलब 'बांध' या

'रुकावट' है अभी तक पूरी तरह उन क़ौमों की बदनीयती और हमलों दोनों को रोक रहा था जो उस इलाक़े के आस पास दुनिया की हकूमत के लिये लड़ रही थीं। इसी हिस्से की घाटियों में मक्का और मदीना के वे पाक शहर हैं जिनमें से एक में इसलाम जन्मा और दूसरे में पनपा।"*

उस रेगिस्तान को छोड़ कर जो आबादी के लिए बेकार था सिर्फ़ एक हेजाज़ का इलाक़ा ही अरब भर में उन दिनों अपने को आज़ाद कह सकता था, और आगे के बयान से पता चलेगा कि उस पर भी इन तीनों विदेशी ताक़तों के दांत बराबर लगे हुए थे।

अरबों में बहादुरी की कमी न थी। उन्हें आज़ादी भी बहुत प्यारी थी। क़ुरबानी या त्याग का माद्दा उनमें हद दरजे का था। मेहमानों की ख़ातिर करना और अपनी आन पर मर मिटना भी उन्हें ख़ूब आता था।

लेकिन वे झूठे वहमों और बुरे रिवाजों में डूबे हुए थे। आपसी लड़ाइयां और हत्याएं उनके आए दिन की ज़िन्दगी का एक ज़रूरी हिस्सा थीं। उनका सारा जीवन टुकड़े टुकड़े हो रहा था। उनका आगे ज़िन्दा रहना भी ख़तरे में था। उन्हें एक ऐसी महान आत्मा की ज़रूरत थी, जो उनके सब बुरे रिवाजों और

---

* Life of Mohammed, by Mirza Abul Fazl, Introduction, P. 1-2.

वहमों के जाल को तोड़कर फेंक सके, उन्हें अंधेरे से निकाल कर उजाले में लाकर खड़ा कर सके, उनकी घरेलू लड़ाइयों को हमेशा के लिये बन्द कर उन्हें एक डोरी में बांध सके और सामने खड़ी मौत से बचा कर उन्हें तरक़्क़ी, भलाई और आज़ादी की तरफ़ ले जा सके।

इस तरह के देश और इस तरह के आदमियों में मक्के के एक बड़े घराने के अन्दर तारीख़ ९ रबीउल अव्वल, सोमवार, २० अप्रैल सन् ५७१ ईसवी* को सूरज निकलने के वक़्त मोहम्मद साहब का जन्म हुआ।

---

*महमूद पाशा फ़लकी, सीरतुन्नबी, लेखक शिबली, जिल्द एक, सफ़ा १६०।

मोहम्मद साहब का जन्म

मक्के का शहर दुनिया के सब से पुराने शहरों में गिना जाता है। मोहम्मद साहब से एक हज़ार साल पहले यूरोप के साथ हिन्दुस्तान और दूसरे एशियाई देशों की तिजारत अरब ही के रास्ते होती थी। अरब सौदागरों की उन दिनों भारत के पूरबी और पच्छिमी किनारों पर बहुत सी ख़ुशहाल बस्तियां थीं। अरब मल्लाह जो आम तौर पर यमन के रहने वाले होते थे हिन्दुस्तान और आस पास के देशों का माल अपने जहाज़ों में लादकर यमन ले जाते थे। वहां से ख़ुश्की के रास्ते यह माल शाम जाता था और शाम से यूनान, रोम, मिस्र वग़ैरह देशों में। यमन और शाम के बीच पहाड़ियों से घिरा हुआ मक्के का शहर है। इसी लिए तिजारत के ख़याल से मक्का उन दिनों बहुत बढ़ा चढ़ा था। इस तिजारत से तरह तरह का लगाव रखने वाले बहुत से लोग मक्के में और उसके आस पास बस गए। मक्का अरब का सब से बड़ा और सबसे ख़ुशहाल शहर बन गया और एक तरह की ठीक ठीक हकूमत वहां क़ायम हो गयी।

मक्के के बड़प्पन का दूसरा सबब काबे का पुराना मन्दिर है। यह मन्दिर भी मोहम्मद साहब से कम से कम हज़ारों साल पहले से अरब और उसके आस पास के लोगों का सबसे बड़ा तीर्थ चला आता था। मक्के की बढ़ी हुई तिजारत और काबे की पूजा इन दोनों के सबब मक्के के हाकिम का मान और उसकी धाक अरब में शुरू से बढ़ी चढ़ी थी।

मक्के में सब से ज़्यादह इज़्ज़त आबरू वाला क़बीला उन दिनों क़ुरैश का क़बीला था। क़ुरैश का सरदार ही मक्के के छोटे से राज का मालिक या हाकिम होता था और वही काबे की देख भाल करता था। मोहम्मद साहब का परदादा हाशिम—जिसके नाम पर मोहम्मद साहब के खानदान के लोग 'बनी हाशिम' कह लाते थे—अपने ज़माने में मक्के का हाकिम था और लोग उसे बड़े आदर और प्रेम से देखते थे। हाशिम के बाद हाशिम का भाई मुत्तलिब और मुत्तलिब के बाद हाशिम का बेटा अब्दुल मुत्तलिब गद्दी पर बैठे। अब्दुल मुत्तलिब के कई लड़के थे जिनमें सब से छोटा लड़का अब्दुल्ला २५ साल की उम्र में अपनी शादी के दो साल के अन्दर मर गया। अब्दुल्ला के मरने के कुछ रोज़ बाद अब्दुल्ला की बेवा आमिना ने बालक मोहम्मद को जन्म दिया।

पहले पच्चीस साल

आमिना इतनी दुखी और बीमार थी कि वह सात दिन से ज्यादह बच्चे को दूध न पिला सकी। उसके बाद कुछ दिन तक अब्दुल मुत्तलिब के एक दूसरे बेटे अबु लहब की एक बांदी ने मोहम्मद को दूध पिलाया। फिर मक्के के पास की एक पहाड़ी से साद क़बीले की एक औरत हलीमा ने बच्चे को अपने घर लेजाकर पाला। पांच साल की उम्र होने पर धाया हलीमा ने बालक को लाकर फिर माँ को सौंप दिया। लेकिन अगले साल ही माँ आमिना भी चल बसी। इस तरह एक बड़े घराने में पैदा होने पर भी बालक मोहम्मद को माँ बाप का सुख न मिल सका।

बड़े होने पर मोहम्मद साहब ने कई बार भरे दिल से आमिना की क़ब्र की यात्रा की। धाया हलीमा से भी जीवन में कई बार उनकी भेंट हुई और हर बार उन्हों ने हलीमा की तरफ़ गहरी मोहब्बत और इज्ज़त दिखलाई।

माँ के मरने के बाद कई साल तक दादा अब्दुल मुत्तलिब ने अनाथ मोहम्मद की देख रेख की, और उसके बाद अब्दुल्

मुत्तलिब के बड़े बेटे अबु तालिब ने उन्हें पाला। क़रीब दस साल की उम्र में मोहम्मद साहब का ज्यादह वक्त मक्के के आस पास की पहाड़ियों पर अबु तालिब की बकरियाँ चराने में बीता करता था।

अब हम दो ऐसी बातों को बयान कर देना चाहते हैं जिनका नौजवान मोहम्मद के दिल पर मालूम होता है सब से गहरा असर पड़ा, और जिनसे अपनी क़ौम की बिगड़ी हुई हालत का ख़ाका उनकी आंखों के सामने खिंच गया। इनमें पहली बात मोहम्मद साहब की पैदायश से भी ५५ दिन पहले की है, जिसका उन्होंने बड़े होकर दूसरों से हाल सुना। अरब का यमन सूबा इथियोपिया के ईसाई बादशाह के क़ब्ज़े में था। बादशाह के हुकुम से यमन के ईसाई हाकिम अबराहा ने एक बहुत बड़ी फ़ौज लेकर जिसमें कई हाथी भी थे मक्के पर हमला किया और काबे को गिरा डालना और मक्के को इथियोपिया के बादशाह के राज में मिला लेना चाहा। यह हमला अरबों के धर्म और उनकी आज़ादी दोनों के ऊपर एक ज़बरदस्त हमला था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि उन दिनों अरब भर में हेजाज़ का इलाक़ा ही पूरी तरह आज़ाद था। मालूम होता था कि अबराहा की फ़ौज को कोई हरा न सकेगा। मक्के वालों का कहना है कि परमात्मा ने अबराहा की फ़ौज पर कोई अचानक आफ़त भेजकर उसे तितर बितर कर दिया। जो हो, इसमें शक नहीं हज़ारों जानें गंवाकर अबराहा को मक्के के बाहर से ही ख़ाली

हाथ लौट जाना पड़ा। मोहम्मद साहब ने बचपन में इस बात को सुना। उनके दिल पर इसका इतना गहरा असर पड़ा कि क़ुरान के एक अलग सूरे में इस बात का ज़िक्र आता है। इस से अपने देशवालों की बेबसी और उनके सामने की आफ़त मोहम्मद साहब को दिखाई दे गई।

दूसरी बात उक्काज़ के मेले में हुई। सन् ५८० ई० में उक्काज़ के मेले के मौक़े पर मक्के से पूरब के एक हवाज़िन क़बीले के किसी शायर ने क़ुरैश के सामने अपने क़बीले की बड़ाई का बखान किया। क़ुरैश से न सहा गया। दोनों तरफ़ से तलवारें खिंच गईं। दोनों इस बात को भी भूल गए कि वे दिन, जैसा रिवाज चला आता था, लड़ाई बन्द रखने के दिन थे। दस साल तक यह घरेलू लड़ाई जारी रही। कई कई क़बीले दोनों तरफ़ से आ मिले। हज़ारों जानें गईं। जिन दिनों ये लड़ाई जारी थी मोहम्मद साहब की उम्र दस और बीस बरस के बीच में थी। अरब के इतिहास (तारीख़) में इस दस बरस की जंग को 'हरबे फ़िजार' यानी नापाक लड़ाई या अधर्म की लड़ाई कहा जाता है, क्यों कि यह लड़ाई उस महीने में शुरू हुई जिसमें लड़ना मना था।

छोटी उम्र से ही मोहम्मद साहब को एकान्त में रहने और सोचने की आदत थी। जबकि उनके साथी खेल कूद में वक़्त खोया करते थे मोहम्मद साहब कहा करते थे, "आदमी खेल

कूद में वक्त खोने के लिए नहीं, किसी ज़्यादह ऊंचे मतलब के लिये बनाया गया है।"*

जब १२ बरस के हुए तो मोहम्मद साहब अपने ताया अबु तालिब के साथ एक तिजारती क़ाफ़ले में मक्के से पहली बार शाम गए। रास्ते में उन्हें कई यहूदी बस्तियों से होकर जाना पड़ा। इससे उन्हें उस ज़माने के यहूदी धर्म से ख़ासी जानकारी हो गई। शाम का देश उन दिनों रोम के ईसाई सम्राटों के मातहत था। वहां ईसाई धर्म का ख़ूब ज़ोर था। मोहम्मद साहब को अपनी जवानी में कई बार शाम जाने का मौक़ा मिला। एक विद्वान लिखता है कि "शाम में मोहम्मद के सामने लोगों की बुरी हालत और धर्म की गिरावट का वह परदा खुल गया जिसकी याद उनकी आंख के सामने से फिर कभी फीकी न पड़ सकी।"†

शाम का देश जिसमें फ़िलस्तीन और यरुसलम शामिल थे दुनिया के सब से पुराने और सब से हरे भरे देशों में गिना जाता है। कहा जाता है कि शाम की घाटियों से ज़्यादह अच्छे मेवे दुनिया में कहीं पैदा नहीं होते। यहूदी धर्म की सब ख़ास ख़ास बातें इसी देश में हुईं। बहुत पहले जब दमश्क़ शाम की राजधानी था शाम एशिया की सबसे सुखी और ज़बरदस्त हकूमतों में

---

*"Life of Mohammad", by M. A. Fazl, P. 20.
† Ibid, P. 22.

गिना जाता था। शाम के इलाक़े फ़ीनीशिया में सदियों तक दुनिया भर की तिजारत की सबसे बड़ी और सबसे ज्यादह भरी पूरी मंडियां थीं। सिकन्दर के बाद सदियों तक यह देश यूनानियों के हाथ में रहा और यूनान की बढ़ी हुई विद्याओं, विज्ञान (साइन्स) और दर्शन (फ़लसफ़े) के पढ़ने पढ़ाने की यह एक बड़ी जगह रही। सदियों इसमें सैकड़ों ही बौद्ध मठ थे और बौद्ध धर्म और बौद्ध दर्शन की घर घर चर्चा होती थी। शाम ने ही हज़रत ईसा और ईसाई धर्म को जन्म दिया। हज़रत ईसा के तीन सौ साल बाद तक यह देश ज्ञान, विज्ञान, धन धान्य, दस्तकारी और तिजारत सबके लिए मशहूर था। लेकिन मोहम्मद साहब के वक़्तों में वह क़ुस्तुनतुनिया के ईसाई सम्राट के हाथों में था और ईसाई धर्म का एक ख़ास अड्डा माना जाता था।

सम्राट थियोडोसियस ने शाम के पुराने धर्मों यानी बौद्ध धर्म और यहूदी धर्म को बुरा बताया, वहां के तमाम मन्दिरों को गिरवा दिया और हुकुम दे दिया कि,—"जो कोई आदमी सिकन्दरिया और रोम के ईसाई पादरियों के बताए हुए मज़हबी असूलों को न मानेगा और उन पर न चलेगा उसका सब धन दौलत ज़ब्त कर उसे देश से निकाल दिया जायगा।" यह भी हुकुम दे दिया गया कि "जो कोई यहूदियों वाले दिन ईस्टर का त्योहार मनावेगा उसे मौत की सज़ा दी जावेगी।" हिन्दुस्तान, मिस्र, यूनान जैसे देशों के विद्वान सदियों पहले

ज़मीन के गोल होने का पता लगा चुके थे। जिस सदी में मोहम्मद साहब का जन्म हुआ ठीक उस सदी में ईसाई महन्त सेण्ट आगस्टाइन ने इस बात को इस लिये झूठ ठहराया क्योंकि इंजील में ज़मीन को चपटा लिखा था। हुकुम दे दिया गया कि, "जिन किताबों में ज़मीन के गोल होने की बात लिखी हो उन्हें जला दिया जावे।"

मोहम्मद साहब के दिनों के पोप ग्रिगरी ने ईसाई धर्म के उस निकम्मे पूजा पाठ और उन रस्म रिवाजों को, जिन्हें ऊपर थोड़ा सा बयान किया जा चुका है, हुकुम देकर, हमेशा के लिये असली ईसाई धर्म ठहरा दिया। लेकिन ये सब लचर बातें उन दिनों के यूनानी ज्ञान विज्ञान की रोशनी में न ठहर सकती थीं। इसीलिये पोप ग्रिगरी के बारे में लिखा है कि,—"विद्या का उससे बढ़कर जानी दुशमन कभी कोई पैदा नहीं हुआ।" उसने ख़ुद रोम के मशहूर 'पैलेटाइन' किताबघर को आग लगा दी और गणित (रियाज़ी), भूगोल (जुग़राफ़िया), ज्योतिष (नजूम), वैद्यक (तबाबत), दर्शन (फ़लसफ़ा) पढ़ाने वालों को देश से निकाल दिया। "दार्शनिकों (फ़िलासफ़रों) को ढूंढ़ ढूंढ़ कर क़त्ल किया जाने लगा। जिस किसी पुरानी किताब की नक़ल मिलती थी उसे तुरत जला दिया जाता था। पच्छिमी एशिया भर में लोगों ने इस डर से अपने अपने किताब घरों की सब किताबें अपने हाथों से जलादीं कि कहीं किसी किताब की किसी बात के लिए उनके सारे कुनबे को क़त्ल न कर

दिया जावे।"* वैद्य का पेशा करने वालों यानी दवाओं से बीमारियों का इलाज करने वालों की सज़ा मौत थी। हुकुम दिया गया कि बीमारों के इलाज के लिये ईसाई पादरियों और महन्तों के गण्डे तावीज़ और दुआएं काफ़ी हैं। ईसाई पादरियों तक के लिये "बपतिस्मे के वक्त तीन बार पानी में डुबकी लगा लेना, शहद और दूध मिला कर चाट लेना, कपड़े या जूते पहनते वक्त माथे पर क्रूश का निशान कर लेना और मरियम और सन्तों की मूर्तियों के सामने धूप दीप जला देना" नेक चलनी के मुक़ाबले में कहीं ज्यादह ज़रूरी बातें समझी जाती थीं। जो आदमी इस बात को मानने से इनकार करता था कि हज़रत ईसा के जन्म से सैकड़ों साल पहले फ़िरऔन (यानी मिस्र का पेरोए) जिस रथ में बैठ कर गया था उसके पहियों के निशान अभी तक लाल समुद्र के रेत में बने हुए हैं और समुद्र की लहरें या हवा के झोंके उन्हें नहीं मिटा सकते, उसे अधर्मी कह कर मार डाला जाता था।

इन सब बातों से पता चलता है कि शाम देश के उन लोगों को जो सदियों पहले यूनानी ज्ञान विज्ञान और बौद्ध दर्शन का आनन्द ले चुके थे छठवीं सदी के आख़ीर में ईसाई धर्म के नाम पर कैसे कैसे ज़ुल्मों और आफ़तों का सामना करना पड़

---

* A History of the Intellectual Development

रहा था। यह सब हालत लड़कपन में मोहम्मद साहब की नज़र के सामने से गुज़री। कई बार कई बड़े बड़े ईसाइयों से उनकी बातचीत हुई, जिनमें एक ईसाई महन्त नस्तूर का ख़ास तौर पर ज़िक्र मिलता है। पहली ही बार की शाम की यात्रा में एक नेक ईसाई साधु बुहैरा का भी नाम आता है जिस पर बालक मोहम्मद के सवालों, उसकी गहरी खोज, उसके बड़े दिल, उसकी सूझ बूझ और उसकी पहुँच का बहुत बड़ा असर पड़ा।

मोहम्मद साहब की ज़िन्दगी के पहले २५ साल अपने ताया अबु तालिब के साथ तिजारत करने में और इसी तरह के तजरुबे हासिल करने में बीते। इन दिनों मोहम्मद साहब ने तिजारत में इतनी होशियारी हासिल करली और अपनी सच्चाई और ईमानदारी के लिये वह चारों तरफ़ इतने मशहूर हो गए कि मक्के के दूसरे बहुत से व्यापारी उन्हें अपना एजण्ट बनाकर उनकी मारफ़त व्यापार करने लगे।

गृहस्थी



इससे कुछ पहले शहर का एक बड़ा और मालदार सौदागर चल बसा। उसकी बेवा ख़दीजा को अपने काम काज के लिये एक होशियार और ईमानदार एजण्ट की ज़रूरत पड़ी। अबु तालिब ने अपने भतीजे की ख़दीजा से सिफ़ारिश की। ख़दीजा ने मान लिया। अब ख़दीजा के एजण्ट की हैसियत से मोहम्मद साहब कुछ दिनों शाम, दमश्क़ और दूसरे मुल्कों से तिजारत करते रहे। मोहम्मद साहब की मेहनत और ईमानदारी से ख़दीजा को बहुत लाभ हुआ। आख़िर एक बार उनके शाम से मक्का लौटने पर बेवा ख़दीजा ने उनसे शादी करने की बात कही। वह राज़ी हो गए। मोहम्मद साहब की यह पहली शादी थी। दोनों की उम्र में बड़ा फ़रक़ था। मोहम्मद साहब की उम्र इस शादी के वक्त पचीस और ख़दीजा की चालीस थी। फिर भी यह शादी ज़िन्दगी भर दोनों के लिये बहुत बड़ी बरकत साबित हुई और आख़ीर तक दोनों में ख़ूब प्रेम रहा। इस तरह मोहम्मद साहब की गृहस्थी शुरू हुई।

अल-अमीन

२५ साल की उम्र तक उस ज़माने के तमाम बयानों से मोहम्मद साहब की ईमानदारी और नेकचलनी का काफ़ी सबूत मिलता है। जब उनकी उम्र के लोग, मक्के में जैसा रिवाज था, शायरी करने और आवारा फिरने में अपना वक्त खोते थे, मोहम्मद साहब को जब कभी अपने कारबार से फ़ुरसत मिलती वह एकान्त में कुछ न कुछ सोचते दिखाई देते थे। मिलने जुलने में वह सब के साथ बहुत ही मीठे यहां तक कि शरमीले थे। उनका रहन सहन बड़ा सादा, उनका मन उनके बस में, तन्दुरुस्ती अच्छी, दिल मुलायम, और चेहरा चमकता हुआ था। लोग उन्हें देखकर ही उनकी तरफ़ खिंचने लगते थे।

जवानी में ही अपनी सच्चाई और ईमानदारी के लिये वह इतने मशहूर हो गए कि तमाम मक्का के लोग उन्हें 'अल्-अमीन', यानी जिस पर भरोसा किया जा सके, कह कर पुकारा करते थे और ज़िन्दगी के आख़ीर तक वह इसी नाम से पुकारे जाते रहे।

मक्के की हकूमत का और मक्केवालों के झगड़े तय करने का हक़ उन दिनों क़ुरैश के सरदार को था। लेकिन आए दिन बाहर से आने वाले यात्रियों और दूसरे लोगों के जान माल के बचाव का कोई इन्तज़ाम न था। मक्के के आस पास और ख़ुद मक्के में अकसर इन लोगों का माल असबाब और कभी कभी उनके बाल बच्चे तक लूट लिये जाते थे, और कोई कचहरी न थी जिसमें जाकर वह दाद फ़रियाद कर सकें। मोहम्मद साहब से कई सौ साल पहले फ़ज्ल, फ़ज़ाल, मुफ़ज़्ज़ल और फ़ुज़ैल नामके चार बहादुर और दयावान नौजवानों ने मक्के के अन्दर इस पाक काम को अपने हाथों में ले रखा था। लेकिन उनके बाद फिर कोई इस तरह का बन्दोबस्त न रहा। मोहम्मद साहब ने अपनी शादी के बाद ही सब घरानों के ख़ास ख़ास लोगों को जमा किया। उन्होंने एक दल बनाया जिसका काम मक्के में और उसके आस पास परदेसियों की जान और उनके माल की हिफ़ाज़त करना था। उस दल के हर आदमी को इस बात की क़सम खानी पड़ती थी कि वह हर परदेसी की हिफ़ाज़त करेगा और किसी को उस पर ज़ुल्म न करने देगा। पुराने ज़माने के उन चार बहादुरों की याद में इस दल का नाम 'हिल फ़ुल फ़ुज़ूल' रखा गया। यह दल कम से कम ६० साल तक काम करता रहा।

अरब में उन दिनों ग़ुलामों के बिकने का आम रिवाज था। कुछ लोग शाम के दक्खिन से किसी ईसाई क़बीले के एक

लड़के को जिसका नाम ज़ैद था कहीं से पकड़ लाए। ज़ैद मक्के के बाज़ार में आकर बिका। ख़दीजा के एक रिश्तेदार ने उसे ख़रीद कर ख़दीजा को दे दिया। ख़दीजा ने उसे मोहम्मद साहब को दे दिया। मोहम्मद साहब ने ज़ैद को आज़ाद करके उसे बड़े प्रेम से अपने साथ रख लिया। कुछ दिनों बाद ज़ैद का बाप हारीस पता लगा कर मक्के पहुँचा। उसने ज़ैद को अपने साथ घर ले जाना चाहा। लेकिन ज़ैद मोहम्मद साहब के बर्ताव से इतना ख़ुश था कि उसने बाप के साथ जाने से इनकार कर दिया।

मोहम्मद साहब की उम्र जब क़रीब ३० साल की थी मक्के में एक बड़ी डरावनी भेद भरी बात का पता चला। वह यह थी। क़ुस्तुनतुनिया के सम्राट ने बहुत सा माल ख़र्च करके उसमान नामी एक ईसाई अरब के ज़रिये मक्के और हेजाज़ पर क़ब्ज़ा करना चाहा। पता लगते ही मोहम्मद साहब ने मक्का वालों की और ख़ुद उसमान की आन, देशभक्ति और उनकी आज़ादी की मुहब्बत के नाम पर अपील की और मोहम्मद साहब ही की कोशिश से रोम के सम्राट की वह चाल उलटी पड़ी।

पांच साल बाद एक और बात हुई जो देखने में बहुत मामूली थी; लेकिन जिसके नतीजे अरब की आज़ादी के लिए ऊपर की चाल से भी कुछ कम बुरे न हो सकते थे। इस दूसरी बात से इन बातों का भी पता चलता है कि मोहम्मद साहब

कितने अमन चाहने वाले और कितने सूझ बूझ वाले थे, और अपने देश भाइयों में उनका मान कितना बढ़ा हुआ था।

काबे की कुछ दीवारें पानी की बाढ़ से फट गईं। मन्दिर की मरम्मत की ज़रूरत हुई। मरम्मत के बीच में काबे के पाक पत्थर "संगे असवद" को फिर से ठीक जगह पर लगाने का सवाल उठा। यह पत्थर एक फ़ुट छै इंच लम्बा, आठ इंच चौड़ा और बहुत पुराने ज़माने का एक अंडे की शक्ल का टुकड़ा है जो मोहम्मद साहब के हज़ारों साल पहले से आज तक काबे की ख़ास चीज़ है और दक्खिन पूरब के कोने में ज़मीन से पांच छै फ़ुट की उंचाई पर लगा हुआ है। आज तक सब मुसलमान यात्री इज़्ज़त से उसे चूमते हैं। क़ुरैश क़बीले की चार बड़ी बड़ी शाख़ों में झगड़ा होने लगा कि संगे असवद को उठाकर ठीक जगह पर लगा देने की बड़ाई किसे दी जावे। झगड़ा बढ़ गया। आख़िर सबने मिलकर इस झगड़े के फ़ैसले के लिये अपने अल् अमीन मोहम्मद को पंच बनाया। मोहम्मद साहब ने मौक़े पर जाकर अपनी चादर बिछादी, उस चादर के ऊपर अपने हाथ से संगे असवद को रख दिया, फिर चारों ख़ानदानों के चार मुखियों से कहा कि वे सब मिलकर चारों तरफ़ से उस चादर को ऊपर उठावें। इस तरह उन सबने मिल कर संगे असवद को ठीक जगह पर पहुँचा दिया। चादर को उस जगह के साथ मिला दिया गया और मोहम्मद साहब ने हलके से सहारा देकर संगे असवद को उसकी जगह पर सरका

दिया। इस तरह एक ऐसा झगड़ा, जिससे न सिर्फ़ क़ुरैशों में बड़ी आपसी लड़ाई छिड़ सकती थी, बल्कि जिसमें अरब के सब क़बीले खिंच आ सकते थे और जो एक बड़ी क़ौमी बला साबित हो सकता था, आसानी से तय हो गया।

एकान्त में रहना

अरब और आस पास के देशों के लोगों की हालत, उनकी आपस की फूट, उनके अजीब अजीब धर्म और रिवाज, और विदेशी हकूमतों के उन पर ज़ुल्म, इन सब बातों पर मोहम्मद साहब शुरू से ही दुखी और सोच विचार में डूबे हुए दिखाई देते थे। अकेले में रहने की भी उन्हें शुरू से आदत थी। अब आकर उनके जीवन में एक नई बात दिखाई देने लगी।

उनके दिल में शुरू से एक ईश्वर में पक्का विश्वास था। यहूदी और ईसाई विद्वानों और ख़ासकर शाम के ईसाई साधुओं से उन्होंने यह भी सुन रखा था कि लम्बे उपवासों (रोज़ों), प्रार्थनाओं, दुआओं, और चुपचाप दुख सहने से ईश्वर अपने भक्तों पर दया करते हैं और उन्हें सचाई का रास्ता दिखलाते हैं। मोहम्मद साहब के दिल में इन सब धर्मों के लिये इज़्ज़त थी। लेकिन इन धर्मों की उन दिनों की हालत को देखते

फिर एक रात को जब वह अकेले सोच विचार में डूबे पड़े थे किसी ने उनसे ज़ोरों के साथ कहा "ऐलान कर !" मोहम्मद साहब चौंके। फिर आवाज़ आई "ऐलान कर !" तीसरी बार आवाज़ आई "ऐलान कर !" मोहम्मद ने घबरा कर पूछा "क्या ऐलान करूं ?" जवाब मिला—

"ऐलान कर अपने उसी रब्ब के नाम पर जिसने जगत को बनाया।

"जिसने प्रेम† से प्रेम का पुतला आदमी तय्यार किया, ऐलान कर ! तेरा रब्ब बड़ा ही दयावान है, उसने आदमी को क़लम के ज़रिये ज्ञान दिया और आदमी को वे सब बातें सिखाईं जिन्हें वह नहीं जानता था।"*

ये क़ुरान की वे पांच आयतें हैं जिनका मोहम्मद साहब को सबसे पहले इलहाम हुआ। यही उनके 'पैग़म्बर' ('ईश्वर का पैग़ाम यानी संदेसा लाने वाला') होने की पहल थी।

इलहाम, वही, रिविलेशन, आकाशबानी या ईश्वर का संदेसा क्या चीज़ें हैं ? सचाई का कोई ऐसा भण्डार है या नहीं जिसका साया आदमी के दिल के मंजते मंजते उस दिल की ख़ास सफ़ाई की हालत में कभी उस दिल पर ख़ास रूप से पड़ सकता

---

†'अलक़' शब्द के माइने अरबी में 'प्रेम' और 'खून की फुटक' दोनों होते हैं। यहां दोनों माइने लग सकते हैं।

*कुरान ९६.१-५

हो ? आत्मा की कोई ऐसी हालत हो सकती है या नहीं जिसमें थोड़ी देर के लिये ग़ैब से यानी किसी ऐसी जगह से जिसके बारे में कुछ कहा ही नहीं जा सकता उसके भीतर ज्ञान का दरवाज़ा खुल जाता हो ?—ये सब ऐसे सवाल हैं जिनकी ज्यादह गहराई में जाना इस वक्त हमारे मतलब से दूर है। लेकिन इसमें शक नहीं मोहम्मद साहब का इलहाम का दावा दुनिया के धर्मों के इतिहास में कोई अनोखी चीज़ न थी। दुनिया के ज्यादह तर धर्मों के क़ायम करने वालों, और हज़ारों ऋषियों, महात्माओं, पीरों, पैग़म्बरों और वलियों ने किसी न किसी रूप में इसका दावा किया है और वेद, तौरेत, इंजील सब के करोड़ों मानने वाले अपनी अपनी किताबों को इलहामी यानी ईश्वर की कही हुई मानते हैं। इसमें भी शक नहीं कि खोजी और बेचैन मोहम्मद को ठीक उसी तरह और उसी तरह की हालतों में अपने भीतर से या अपने परमात्मा से रोशनी मिली जिस तरह दुनिया के किसी भी बड़े से बड़े पैग़म्बर, द्रष्टा या धर्म चलाने वाले को कभी मिली है। इसी रोशनी में मोहम्मद साहब को अपने देश, अपनी क़ौम और सारी इन्सानी क़ौम के भले का रास्ता नज़र आया और इसी ने उन्हें अपने मिशन को फैलाने और उसके लिये हर तरह की तकलीफ़ें उठाने को तय्यार कर दिया।

"सचमुच अगर कभी कोई आदमी मौत की तरह अटल बने रहकर अपनी लगन का सच्चा था तो अरब भूमि का यह वफ़ादार बेटा था।

अगर कभी किसी आदमी ने दुनिया के पैदा करने वाले के सामने अपना दिल और अपनी आत्मा खोलकर रखदी तो इस व्यापारी मोहम्मद ने रख दी थी। सचमुच अगर दुखों में डूबी हुई और उन्हें चुपचाप सहती हुई किसी आत्मा को कभी भी हमारे बनाने वाले रब्ब का दर्शन हुआ है तो हाजरा नामी दासी की इस औलाद को हुआ है।"*

एक अनोखे असर और जोश में मोहम्मद साहब ने ऊपर की पांचों आयतों को साफ़ साफ़ कह डाला। इस पर भी उन्हें अपने होश हवास पर भरोसा न हुआ। वह तबियत से बहुत ही लजीले और लिखा है कि 'औरतों से भी ज्यादह शरमीले' थे। ख़दीजा से उन्हें गहरा प्रेम था और ख़दीजा को उनसे। ख़दीजा की समझ बूझ और सचाई पर भी उन्हें भरोसा था। ख़दीजा की उम्र अब क़रीब ५५ साल थी। मोहम्मद साहब घबराए हुए ख़दीजा के पास पहुँचे और सब हाल सुनाकर कहने लगे—"ख़दीजा! मुझे क्या हो गया? मैं कहीं पागल तो नहीं हो गया?" ख़दीजा ने जवाब दिया—"ऐ क़ासिम† के बाप! डरो मत, तुम बड़ी ख़ुशी की ख़बर लाए हो। मैं अब से तुम्हें अपनी क़ौम का पैग़म्बर समझूंगी। ख़ुश हो! अल्लाह कभी तुम्हें शरमिन्दा न होने देगा। क्या तुम सदा अपने रिश्तेदारों के

---

* "Islam Her Moral and Spiritual Value", by Major A. G. Leonard, PP. 69-70.

†मोहम्मद साहब का एक बेटा जो बचपन में ही मर गया था।

साथ प्रेम का सलूक करने वाले, पड़ोसियों के ग़रीबों को दान देने वाले, मेहमान की खातिर करने वाले, अपने वचन का पालन करने वाले और हमेशा सचाई के तरफ़दार नहीं रहे !"

खदीजा का एक रिश्तेदार वरक़ा यहूदी और ईसाई धर्म की किताबों का विद्वान् मशहूर था। वह बहुत बूढ़ा और अन्धा था और आसपास बड़ी इज्ज़त की निगाह से देखा जाता था। खदीजा जल्दी से वरक़ा के पास गई। उसने वरक़ा को सब हाल कह सुनाया। वरक़ा ने ध्यान से सुनकर जवाब दिया कि "धर्म की किताबों में ऐसे ही मौक़े पर एक इस तरह के पैग़म्बर के भेजे जाने का ज़िक्र है। सचमुच वही फ़रिश्ता जो हज़रत मूसा के पास आया था मोहम्मद के पास भी आया है। मोहम्मद से कहदो घबराए नहीं, हिम्मत के साथ अपने मिशन को पूरा करे।"

विद्वान वरक़ा के तसल्ली देने का मोहम्मद साहब पर बहुत बड़ा असर पड़ा। लेकिन वह फिर भी मैले कुचैले कपड़े पहने, सोच विचार में डूबे हुए एक चादर लपेटे पड़े रहते थे। छै महीने की ज़बरदस्त बेचैनी के बाद फिर एक दिन आवाज़ आई—

ऐ चादर में लिपटे हुए !
उठ और लोगों को आगाह कर
और अपने रब्ब की बड़ाई कर
और अपने कपड़ों को साफ़ कर

और मैले पन से बच
और दूसरों की सेवा करने के लिये किसी पर अहसान मत जता
और अपने रब्बके लिये सब्र से काम ले।*

* कुरान ७४, १-७

मिशन शुरू

इस घड़ी से ही मोहम्मद साहब को अपने मिशन का पूरा यक़ीन हो गया। उनकी बाक़ी उम्र अपने जीवन की इसी ग़रज़ को पूरा करने की कोशिशों में ख़र्च हुई। उन्हों ने अब दुनिया के और सब कामों से अलग होकर मक्के में लोगों को अपने ईश्वर का संदेसा सुनाना शुरू किया।

थोड़े में दूसरे सब देवी देवताओं और मूर्तियों की पूजा को छोड़ कर एक ईश्वर की पूजा करना, ऊंच नीच और क़बीलों के फ़रक़ को तोड़कर सब आदमियों को भाई भाई समझना, जुआ, शराब, चोरी, बदचलनी और लड़कियों की हत्या जैसे बुरे कामों से बचना और नेक कामों में लगना यही इसके बाद से मोहम्मद साहब के उपदेशों का निचोड़ था।

मुसीबतों के तेरह साल



तीन साल की लगातार मेहनत के बाद मुशकिल से चालीस आदमियों ने मोहम्मद साहब के धर्म को माना। इनमें पहले पांच ख़दीजा, अबु तालिब का छोटी उम्र का बेटा अली, ज़ैद, अबु बक्र और उसमान थे। अबु बक्र एक मालदार सौदागर थे। बाक़ी ग़रीब और छोटे लोग ज्यादह थे और बहुत से उन ग़ुलामों में से थे जो उन दिनों अरब में जानवरों की तरह बेचे जाते थे।

मोहम्मद साहब ने सफ़ा नाम की पहाड़ी पर क़ुरैश की एक सभा की और उनसे और सब देवी देवताओं को छोड़ कर सिर्फ़ एक अल्लाह की पूजा करने को कहा। लोगों को बुरा लगा। मोहम्मद साहब की हंसी उड़ाते हुए वे सब अपने अपने घर चले गए।

कुछ दिन बाद उन्हों ने फिर सिर्फ़ अपने ख़ानदान के यानी अब्दुल मुत्तलिब की नसल के लोगों को अपने मकान पर जमा किया। ख़ूब समझाया। लेकिन सिवाय अली के किसी ने उनकी बात न सुनी।

मक्का वालों की उम्मीद छोड़ कर उन्हों ने अब बाहर से आने वाले यात्रियों की तरफ़ ज्यादह ध्यान देना शुरू किया।

क़ुरैश अब उनके ख़िलाफ़ हो गए। क़ुरैश की ज्यादह आमदनी, और बहुतों की रोज़ी काबे के ३६० देवी देवताओं की पूजा से चलती थी। यही उनकी कमाई थी। इसी में मक्के का बड़प्पन था। और इसी पर मोहम्मद साहब का सब से बड़ा हमला था। हज़ारों साल से जमे हुए विश्वास (अक़ीदे) आसानी से नहीं टूटते। क़ुरैश ने हर जगह मोहम्मद साहब की बात काटना शुरू किया।

जहां कहीं मोहम्मद साहब जाते उनका मज़ाक़ उड़ाया जाता, उनपर फबतियां कसी जातीं, उन्हें गालियाँ दी जातीं। जब वह उपदेश देने खड़े होते उन पर पाख़ाना और मुरदा जानवरों की अंतड़ियाँ फेकी जातीं। लोगों से कहा जाता "अब्दुल्ला का बेटा पागल हो गया है, इसकी मत सुनो।" और शोर मचाकर कोशिश की जाती कि कोई उनकी बात न सुनने पावे। कई बार उन्हें पत्थर मार मार कर घायल कर दिया गया। एक बार काबे के अन्दर मोहम्मद साहब पर हमला किया गया और अगर अबु बक्र ने न बचाया होता तो उन्हें वहीं ख़त्म कर दिया जाता। जब इन सब बातों से काम न चला और मोहम्मद साहब न रुके तो फिर उन लोगों को, जो मोहम्मद साहब की बातें मान कर उन पर अमल करने लगते थे, तकलीफ़ें दी जाने लगीं।

बिलाल नामी एक हब्शी ग़ुलाम को, जिसने मोहम्मद साहब के कहने पर मक्के के बुतों की पूजा करने से इनकार कर दिया था, तेज़ धूप में जलते हुए रेत पर लिटा कर एक भारी पत्थर उसके ऊपर रख दिया गया और कहा गया कि मोहम्मद का साथ छोड़कर फिर से अरब के पुराने देवताओं की पूजा शुरू करो। बिलाल ने न माना। इस पर कई दिन तक उसे इसी तरह सताया गया। आख़ीर में जब अबु बक्र को पता चला तो उन्हों ने क़ीमत देकर बिलाल को उसके मालिकों से ख़रीद लिया और फिर आज़ाद कर दिया।

यासिर और उसकी बीवी समीआ दोनों को इसी गुनाह में बरछियां भोंक भोंक कर मार डाला गया। उनके बेटे अम्मार को भी इसी तरह के दुःख दिये गए। अम्मार ने एक बार घबरा कर माफ़ी मांग ली और फिर मोहम्मद साहब के पास जाकर अपनी कमज़ोरी के लिये पछताना और रोना शुरू किया। मोहम्मद साहब ने उसे माफ़ कर दिया और फिर अपनों में मिला लिया।

उस शुरू ज़माने के इसलाम में शहीदों की कमी न थी। अदी के बेटे ख़ुबैब को बड़ी बेरहमी के साथ सताया गया। शिकंजे में कस कर उससे कहा गया—"इसलाम छोड़दो और हम तुम्हें छोड़ देंगे।" उसने जवाब दिया—"सारी दुनिया छोड़ दूंगा पर इसलाम नहीं छोड़ूंगा।" उसके हाथ पांव एक एक कर काटे गए। फिर पूछा गया "क्या तुम अब भी नहीं चाहते कि तुम्हारी जगह मोहम्मद होता ?" जवाब मिला "इससे पहले कि

मोहम्मद के एक कांटा भी चुभे मैं ख़ुद अपने स
कुनबे वालों और माल असबाब समेत मिट जाना पसन्द करूंगा।" ख़ुबैब के टुकड़े टुकड़े कर दिये गए। मांस की एक एक बोटी हड्डियों से अलग कर दी गई। ख़ुबैब शहीद हो गया। पर एक परमेश्वर और उसका संदेसा लाने वाले पर यक़ीन ख़ुबैब के दिल या ज़बान से न उठ सका। इन दिनों अबु बक्र ने बहुत से ग़ुलामों को, जिन्हों ने इसलाम धर्म मान लिया था और जिन्हें इसी क़सूर में उनके मालिक तरह तरह की तकलीफ़ें पहुँचाते थे, अपने पास से पैसा देकर आज़ाद करा दिया।

सन् ६१५ ईसवी में मोहम्मद साहब को अपने धर्म का उपदेश करते पांच साल हो गए। सौ सवा सौ आदमी जिनमें ग़रीब ज्यादह थे उनके मत में आ चुके थे। क़ुरैश की दुशमनी दिन दिन बढ़ती जाती थी। मोहम्मद साहब और उनके साथियों की जान हर घड़ी ख़तरे में थी।

अरब और ख़ास कर मक्के में क़ुरैश का ज़ोर था। लाल समुद्र के उस पार थोड़ी ही दूर पर अफ़रीका में इथियोपिया का ईसाई सम्राट नज्जाशी बड़ा दिलवाला माना जाता था। सन् ६१५ में पहले १५ मुसलमान अपनी जान बचाने के लिए मक्के से इथियोपिया चले गए। धीरे धीरे वहां उनकी तादाद १०१ तक पहुँची जिनमें १८ औरतें थीं। क़ुरैश ने अपने दो आदमी अम्र और अब्दुल्ला इथियोपिया के सम्राट के पास क़ीमती क़ीमती नज़राने देकर भेजे और उससे यह चाहा कि वह

मुसलमानों को पनाह न देकर उन्हें मक्के वापिस भेजदे। सम्राट ने मुसलमानों को अपने दरबार में बुलाया और उनके नए धर्म और उसके क़ायम करने वाले के बारे में सवाल किये। इस पर अली के बड़े भाई जाफ़र ने इथियोपिया के सम्राट के सामने जो बयान दिया वह अरबों की उन दिनों की हालत और मोहम्मद साहब के उपदेशों की बड़ी अच्छी तसवीर है। जाफ़र ने सम्राट से कहा—

"ऐ राजन! हम लोग जंगलीपन और ना समझी में डूबे हुए थे। हम बुतों की पूजा करते थे, नापाक ज़िन्दगी बिताते थे, मुरदार खाते थे और गन्दी बातें मुंह से बोलते थे। आदमी में जितनी अच्छी बातें होनी चाहियें उन सब से हमने मुंह मोड़ रखा था। हम पड़ोसियों और परदेसियों दोनों की तरफ़ अपने धर्म से बेपरवाह थे। हम एक ही क़ानून जानते थे और वह था 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' ऐसी हालत में ईश्वर ने हम ही में एक ऐसा आदमी खड़ा कर दिया जिसके ख़ानदान, जिसकी सचाई, जिसकी ईमानदारी और जिसके पाक जीवन को हम पहले ही से जानते थे। उसने हमें बताया कि अल्लाह एक है और उपदेश दिया कि अल्लाह के साथ किसी दूसरे को न जोड़ो, उसने हमें दूसरे देवताओं या बुतों की पूजा करने से मना किया, और सच बोलना, अमानत में ख़यानत न करना, दूसरों पर दया करना, और पड़ोसियों के हक़ों का ख़याल रखना हमारा धर्म ठहराया, उसने हमसे कहा कि किसी की भी मां बहन के बारे में बुरी बात न कहो और न किसी अनाथ यतीम का माल हज़म करो, उसने हमें हुकुम दिया कि

पापों से भागो और बुराई से बचे रहो, नमाज़ें पढ़ो, ज़कात (दान) दो और रोज़ा रखो। हमने उसकी बात मान ली है, और सिर्फ़ एक निराकार ईश्वर की पूजा करने और उस ईश्वर के साथ और किसी को न जोड़ने के बारे में उसके कहने पर अमल करना शुरू कर दिया है। इसीलिये हमारी क़ौम वाले हमारे ख़िलाफ़ खड़े हो गए। उन्हों ने हमें दुःख पहुंचाए कि हम एक निराकार की पूजा को छोड़ कर फिर से लकड़ी, पत्थर और दूसरी चीज़ों के बुतों को पूजने लगें। उन्हों ने हमें इतनी तकलीफ़ें दी और इतना नुक़सान पहुँचाया कि जब हमने देखा कि हम इनके साथ सलामती से नहीं रह सकते तो हमने आपके देश में पनाह ली। हमें भरोसा है आप उनके ज़ुलमों से हमें बचावेंगे।"*

आए हुए क़ुरैश के आदमियों ने नज्जाशी से शिकायत की कि मुसलमान हज़रत ईसा को ख़ुदा का बेटा नहीं मानते। बाद-शाह ने जाफ़र से पूछा। उसने क़ुरान की वे आयतें पढ़कर सुना दीं जिनमें हज़रत ईसा को पैग़म्बर माना गया है। दूसरे कट्टर ईसाइयों की तरह नज्जाशी ख़ुद भी किसी को 'ख़ुदा का बेटा,' न मानता था। नज्जाशी पर ईसाई रिफ़ारमरों एरियस और नेस्तोरियस के आज़ाद विचारों का असर था। इन सब बातों का नज्जाशी पर इतना अच्छा असर पड़ा कि उसने मुसल-

---

*The Spirit of Islam, by Syed Amir Ali, PP. 100-01.

मानों को क़ुरैश के हवाले करने की जगह अपने यहां ठहरा लिया और क़ुरैश के आदमियों को उनके क़ीमती नज़रानों समेत अरब वापिस कर दिया।

मोहम्मद साहब ने इस ईसाई बादशाह के अहसान को हमेशा याद रखा। बहुत दिनों बाद जब उसके मरने की ख़बर उन तक पहुँची तो उन्हों ने उसकी आत्मा की भलाई के लिये ठीक उसी तरह नमाज़ पढ़ी और दुआ मांगी जिस तरह वे मुसलमानों के लिये मांगा करते थे। लेकिन क़ुरैश की दुशमनी इस से और भी भड़की।

जब और कोई चाल न चली तो क़ुरैश ने लोभ देकर काम निकालना चाहा। क़ुरैश के कुछ मुखिया मोहम्मद साहब के पास आए। उन्होंने मोहम्मद पर 'देश में फ़िसाद खड़ा कर देने', 'घरों में फूट डाल देने', 'बाप दादा के धर्म को बुरा कहने', और 'अपने देवताओं की बुराई करने' का इलज़ाम लगाया। मोहम्मद साहब ख़ुद क़ुरैश थे। लेकिन वे इन सब क़बीलों के फ़रक़ को ही मिटाना चाहते थे। इसलाम के झण्डे के नीचे आते ही क़ुरैश और ग़ैर क़ुरैश, अरब और हब्शी, ग़ुलाम और मालिक सब बराबर होजाते थे और सब के साथ एकसा सलूक होने लगता था। घमंडी क़ुरैश इसे कैसे सह सकते थे। उन्हों ने मोहम्मद साहब से कहा कि "हम सब अपने ऊपर टैक्स लगाकर तुम्हें क़बीले का सब से मालदार आदमी बना देंगे।" "हम तुम्हें अपना सरदार मान लेंगे और तुमसे बिना पूछे कभी कोई

काम न करेंगे। तुम सिर्फ़ अपने इस नए धर्म का उपदेश देना बन्द कर दो।" मोहम्मद साहब पर इसका कोई असर न हुआ। उन्हों ने जवाब दिया—

"मैं भी तुम्हारी तरह सिर्फ़ एक आदमी हूं। पर मुझे ईश्वर से यह इलहाम हुआ है कि हमारा तुम्हारा ईश्वर एक ही है, इसलिये उसी की तरफ़ मुंह करो और उसी से माफ़ी चाहो। उन लोगों पर अफ़सोस है जो ईश्वर के साथ दूसरों को जोड़ते हैं, जो ग़रीबों, दुखियों को दान नहीं देते, जो मौत के बाद की ज़िन्दगी में और इस बात में यक़ीन नहीं करते कि सबको अपने किये हुए का फल भुगतना पड़ता है। लेकिन जिन्हें यक़ीन है और जो नेक काम करते हैं उनके लिये सुख ही सुख हैं।"*

दूसरी बार ये लोग मोहम्मद साहब से फिर मिले और उसी तरह का लालच दिया। मोहम्मद साहब का जवाब वैसा ही साफ़ था—

"मुझे न पैसा चाहिये और न राज, मैं तुम्हें सिर्फ़ अपने ईश्वर का संदेसा सुनाना चाहता हूं। जो तुम मेरी बात मान लो तो इस दुनिया में और दूसरी दुनिया में दोनों में तुम्हारा भला होगा, अगर न मानो तो मैं सब्र कर लूंगा और अल्लाह सब का फ़ैसला करेगा।"†

---

* क़ुरान ४१,६-८.

† क़ुरान ३८,९६ इत्यादि.

लोगों ने मोहम्मद साहब से कहा कि 'तुम पैग़म्बर हो तो कुछ करामात दिखाओ।' मोहम्मद साहब ने जवाब दिया—

"अल्लाह की तारीफ़ करो ! मैं कोई चीज़ नहीं, सिवाय एक आदमी के, ख़ुदा का भेजा हुआ।"*

"मुझसे पहले भी अल्लाह ने जितने रसूल भेजे हैं वे हमारी तुम्हारी ही तरह खाना खाते थे और गलियों में चलते फिरते थे।" †

मोहम्मद साहब ने अपनी ज़िन्दगी भर कभी न कोई करामात, मोजज़ा या चमत्कार दिखाया और न दिखा सकने का दावा किया। क़ुरान में कम से कम १७ बार ज़िक्र आता है कि लोगों ने मोहम्मद साहब से कोई करामात दिखाने के लिए कहा और उन्हों ने हर बार यह कहकर कि मैं कोई करामात नहीं दिखा सकता इनकार कर दिया, वह हमेशा अपने को सिर्फ़ एक मामूली आदमी बताते थे। उन्हें दावा सिर्फ़ इतना था कि 'ईश्वर ने मेरे घट (दिल) के अन्दर सचाई का उजाला किया है और मैं जो तुमसे कह रहा हूँ वह उसी का संदेसा है।' अपने उपदेशों में वह दलीलों से भी काम लेते थे।

---

* क़ुरान १७,९३.

"न मेरे पास अल्लाह के ख़ज़ाने हैं, न मैं ग़ैब का इल्म रखता हूं, न मैं फ़रिश्ता हूं, मैं सिर्फ़ उसी पर चलता हूं जो अल्लाह ने मेरे घट (दिल) में बैठा दिया है।"*

"मेरा अपना नफ़ा या नुक़सान तक मेरे हाथ में नहीं है, जो अल्लाह चाहता है वही होता है। जो मैं ग़ैब जानता होता तो मुझे सचमुच ख़ूब फ़ायदा होता और मुझे किसी तरह का नुक़सान न पहुंचता। मैं तो सिर्फ़ उन लोगों के लिये जो मेरी बात मान लें बुराई से डराने वाला और भलाई की ख़ुश ख़बरी देने वाला हूं।"†

क़ुरैश के सरदारों ने अब और कोई चारा न देख मोहम्मद साहब के ताया अबु तालिब से कहा कि अगर आप अपने भतीजे को इस काम से न रोक लेंगे तो उसकी और उसका साथ देने वालों की जानें सलामत न रहेंगी।

बूढ़े अबु तालिब ने भतीजे को बुलाकर समझाया कि इतने लोगों को अपना और अपने कुनबे वालों का दुशमन बनाए रखना अच्छा नहीं है। मोहम्मद साहब ने समझ लिया कि अब ताया मियां भी अपना हाथ मेरे सर से हटाना चाहते हैं। उन्हों ने जवाब दिया—

"उस अल्लाह की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, अगर वे सूरज को मेरे दाहिने हाथ पर और चांद को मेरे बाएं हाथ पर रख दें तब भी जब तक अल्लाह का हुक्म है, मैं अपने इरादे से न हटूंगा।"

---

* क़ुरान ६,५०।
† ,, ७,१८८।

यह कह कर मोहम्मद साहब रोने लगे और फिर उठ कर चल दिये। अबु तालिब मुसलमान न हुए थे। फिर भी भतीजे की हिम्मत और उसके आंसुओं दोनों का उन पर गहरा असर हुआ। उन्हों ने बनी हाशिम को इकट्ठा करके समझाया कि–"हमारे ख़याल मोहम्मद से मिलें या न मिलें हमें उसकी जान बचानी ही चाहिये, वह हमेशा यतीमों और बेकसों का मददगार और अपने क़ौल और फ़ेल का सच्चा रहा है।" सिवाय एक अबु लहब के और सब ने मान लिया।

उन ही दिनों में हज़रत उमर का इसलाम धर्म को मान लेना भी एक मारके की बात थी। जो मुसलमान अबिसीनिया चले गए थे इनको छोड़कर मुशकिल से पचास आदमी मोहम्मद साहब के साथ मक्के में और थे। इनमें से भी बहुत से अपने नए दीन को छिपाए रखते थे और ख़ुद मोहम्मद साहब, कभी किसी के घर में और कभी किसी के घर में बैठ कर, चुपके चुपके अपने धर्म का उपदेश करते थे।

उमर उन दिनों ३५ साल के रहे होंगे। वह पुराने कट्टर ख़याल के थे। उन्हें पता चला कि मोहम्मद साहब उस मकान में हैं। वह ख़ंजर लेकर मोहम्मद साहब को मारने के लिये निकले। रास्ते में उन्हों ने सुना कि उनकी अपनी एक बहिन और बहनोई दोनों ने इसलाम धर्म मान लिया है। वह गुस्से में पहले बहिन के मकान की तरफ़ बढ़े। मकान के अन्दर से क़ुरान की कुछ आयतें पढ़े जाने की आवाज़ उमर के कान में पड़ी। भीतर

घुसते ही बहनोई को गिराकर उन्हों ने उसकी छाती पर पैर रखा और उसका काम तमाम करने ही को थे कि बहिन बीच में आगई। एक वार में उन्हों ने बहिन के चेहरे को भी लहू लोहान कर दिया। बहिन ने बिना घबराये या पीछे हटे बड़ी शान्ति के साथ जवाब दिया—

"अल्लाह के दुशमन! क्या तू मुझे इस लिये मारता है कि मैं एक सच्चे ईश्वर को मानने वाली हूं! तेरे रहते और तेरे ज़ुल्म सहकर भी मैं इस सच्चे धर्म पर डटी रहूंगी। हां, मैं कहती हूं सिवाय एक ईश्वर के कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, और मोहम्मद उसका रसूल है। उमर! ले अब अपना काम पूरा कर।"

उमर के दिल पर असर हुआ। उनका हाथ रुक गया। वह सोच में पड़ गए। उनकी आंख क़ुरान की कुछ आयतों पर गई जो पास ही किसी चीज़ पर लिखी हुई पड़ी थीं। क़ुरान का यह बीसवां सूरा था। वे उसे यूंही पढ़ने लगे। फिर फिर पढ़ा। इरादा बदला। बहिन और बहनोई दोनों से माफ़ी मांगी। बाहर निकलते ही वह ख़ञ्जर की जगह दिल लेकर मोहम्मद साहब के पास पहुँचे और तुरन्त इसलाम धर्म अपना लिया।

उन्हीं दिनों के आस पास मोहम्मद साहब के एक चचा हमज़ा ने जो पहले उनके कट्टर दुशमन थे, इसलाम अपनाया। लिखा है कि "मोहम्मद साहब को उन दिनों जितनी तकलीफ़ें दी जाती थीं और जगह जगह उनकी जो बेइज़्ज़ती की जाती थी और जिस शान्ति और धीरज के साथ वह उस सब को

सहते थे उसे देखकर हमज़ा के दिल पर इतना असर हुआ कि वह कट्टर दुशमन से बदल कर पक्का साथी हो गया।"* इसी तरह की और भी बहुत सी मिसालें उन दिनों की मिलती हैं।

मोहम्मद साहब को नए मत का उपदेश करते सातवाँ साल था। अभी तक मक्के की गलियों में उनकी जान ख़तरे में रहती थी। यह देखकर अबु तालिब ने और बनी हाशिम ख़ानदान के दूसरे लोगों ने सोचा कि मोहम्मद साहब और उनके धर्म मानने वालों को लेकर वह मक्के से पूरब की एक ऐसी तंग घाटी में जा बसें जहां कोई आसानी से उन पर हमला न कर सके। इस घाटी को "अबु तालिब का शेब" कहते थे। मोहम्मद साहब, उनके साथी और कुनबे वाले सब वहां जाकर रहने लगे।

क़ुरैश के दो बड़े ख़ानदानों बनी हाशिम और बनी उमैया में पहले से ही लाग डाट चली आती थी। बनी हाशिम को छोड़ कर और सब क़ुरैश मोहम्मद साहब के ख़िलाफ़ थे। इन्हीं में उमैया भी थे। बनी उमैया की तरफ़ से एक लिखावट काबे में टांग दी गयी जिसमें और सब क़ुरैश को क़सम दी गई थी कि जब तक बनी हाशिम मोहम्मद का साथ न छोड़ें और उसे सज़ा के लिये बाक़ी क़ुरैश के हवाले न कर दें तब तक बनी हाशिम से लेन देन, खाना पीना, ब्याह शादी सब तरह का

*The Preaching of Islam, by T. W. Arnold, P. 13.

चलन बन्द कर दिया जावे। तीन साल तक बनी हाशिम मोहम्मद साहब को लिए हुए उसी छोटी सी घाटी में बन्द रहते रहे। उनमें मोहम्मद साहब के घराने के ऐसे लोग भी थे जिन्हों ने अभी तक इसलाम धर्म नहीं अपनाया था। सिर्फ़ अपने घराने की आन और मोहम्मद साहब से प्रेम के सबब वह उनका साथ दे रहे थे। इन तीन साल के कड़े बाइकाट से मोहम्मद साहब और उनके साथियों को काफ़ी दुःख उठाने पड़े, यहां तक कि कभी कभी इन लोगों को कई कई दिन का फ़ाक़ा हो जाता था।

अरब में यह रिवाज चला आता था कि काबे के मन्दिर की यात्रा के महीनों में अरबों के सब आपस के झगड़े थोड़े दिनों के लिये बन्द हो जाते थे। उन ही दिनों इन लोगों को भी बाहर निकलने और खाने पीने का सामान जमा करने का मौक़ा मिल जाता था। उन दिनों में ही मोहम्मद साहब को भी उस घाटी से निकल कर बाहर के यात्रियों में खुले अपने मत को फैलाने का मौक़ा मिलता था। तीन साल के बाद कहा जाता है कि वह लिखावट जब इतनी फीकी पड़ गई कि पढ़ी न जा सकती थी तब अबु तालिब के कहने सुनने से ज्यों त्यों कर यह बाइकाट ख़त्म हुआ।

मोहम्मद साहब अब ५० बरस के हो चुके थे। अपने धर्म का उपदेश करते उन्हें दस बरस बीत चुके थे। पिछले तीन बरस के बाइकाट के बाद उम्मीद की जा सकती थी कि वे बे खटके मक्के में रह सकें और आज़ादी से लोगों को अपने

धर्म का उपदेश दे सकें। लेकिन इस बाइकाट के ख़त्म होने के कुछ दिन बाद ही उनके सबसे बड़े मुरब्बी और प्रेमी अबु तालिब दुनिया से उठ गए। अबु तालिब उस वक़्त ८० साल से ऊपर हो चुके थे।

"अबु तालिब ने अपने भतीजे के लिये अपने और अपने सारे घराने के ऊपर जिस तरह की आफ़तों को बुलाया, और वह भी जब कि अबु तालिब मोहम्मद साहब के धर्म को नहीं मानता था, उससे इस बात का सबूत मिलता है कि अबु तालिब कितनी ऊंची तबियत का, कितने बड़े दिल का, कितना बहादुर और कितना बेलौस आदमी था। साथ ही इस बात से मोहम्मद साहब के दिल की सच्चाई का भी पक्का पता चलता है, क्योंकि किसी ख़ुदग़रज़ धोखेबाज़ के लिये अबु तालिब कभी इस तरह की आफ़त में न पड़ता, और अबु तालिब के पास मोहम्मद साहब को परखने के लिए काफ़ी ज़रिये थे।"*

"जब कि अबु तालिब को इसलाम के पैग़म्बर के मिशन में यक़ीन न था, पैग़म्बर की इस तरह हिफ़ाज़त करने में उसकी यह बहादुरी अचम्भे में डालने वाली है, और मोहम्मद साहब की ईमानदारी का यह बहुत बड़ा सबूत है कि वह अबु तालिब जैसे ज़बरदस्त और सच्चे आदमी पर इतना गहरा असर डाल सके।"†

अबु तालिब को मरे अभी तीन दिन न हुए थे कि मोहम्मद साहब की दूसरी बड़ी मददगार, उनकी २५ साल की साथी

*Life of Mohammet, by William Muir.

†Gillman.

ख़दीजा भी चल बसी। ख़दीजा के मोहम्मद साहब पर बड़े बड़े अहसान थे। "अपनी इस ब्याहता अहसान करने वाली के साथ उन्हों ने बड़े ही प्रेम के, शान्ति के और अच्छे दिन बिताये थे, उन्हें उससे वह सच्ची मुहब्बत थी जो किसी दूसरे के साथ न हो सकती थी।"* मरने के वक़्त ख़दीजा की उम्र ६५ साल की थी। इतिहास (तारीख़) गवाह है कि मोहम्मद साहब ने ख़दीजा के जीते जी अपने घर में या अपने दिल में किसी दूसरी औरत को जगह नहीं दी। अपने ऊपर ख़दीजा के अहसानों को याद करते हुए एक बार ख़दीजा के मरने के बरसों बाद मोहम्मद साहब ने कहा था—

"अल्लाह जानता है उससे (ख़दीजा से) बेहतर और बढ़ कर मेहरबान जीवन की साथी कभी कोई नहीं हुई। जब मैं ग़रीब था उसने मुझे मालदार बनाया, जब लोग मुझे झूठा कहते थे उसने मुझपर यक़ीन किया, जब दुनिया मेरे ख़िलाफ़ थी और मुझे तकलीफ़ें पहुंचा रही थी उस वक़्त उसने सच्चाई के साथ मेरा साथ दिया।"

ख़दीजा से मोहम्मद साहब के दो लड़के और चार लड़कियां हुईं। दोनों लड़के छोटी उम्र में ही ख़दीजा की ज़िन्दगी में मर गए। लड़कियां मौजूद थीं।

अबु तालिब और ख़दीजा दोनों की ऐसे वक़्त में मौत मोहम्मद साहब के ऊपर बहुत बड़ी आफ़त थी। अबु तालिब

*Heroes, Hero-worship and the Heroic in History, by Thomas Carlyle.

के मरते ही क़ुरैश और ख़ास कर दो क़ुरैश सरदारों अबु सुफ़ियान और अबु जहल ने फिर मक्के के अन्दर मोहम्मद साहब का रहना मुशकिल कर दिया। एक दिन जब मोहम्मद साहब उपदेश देने के लिये नगर में निकले तो उनके सिर पर मैला डाल दिया गया। घर पहुँच कर मोहम्मद साहब की एक बेटी जिसने उनका सिर धोया इसे देख कर रो पड़ी। मोहम्मद साहब ने उसे तसल्ली देते हुए कहा—"मेरी बेटी! रो मत! सचमुच अल्लाह तेरे बाप की मदद करेगा।"

मक्के में मोहम्मद साहब का काम ज़्यादह नहीं बढ़ रहा था। उन्हों ने मक्के से कोई ६० मील दूर तायफ़ नामी शहर में जाकर उपदेश देने का इरादा किया। अपने वफ़ादार साथी ज़ैद को वह अपने साथ ले गए। तायफ़ उन दिनों अरब बुत परस्ती का एक बहुत बड़ा गढ़ था। देवी 'लात' का वहां एक बहुत बड़ा मन्दिर था और उसकी ख़ूब पूजा होती थी।

कई दिन के सफ़र के बाद मोहम्मद साहब और ज़ैद तायफ़ पहुंचे। वहां के बड़े बड़े लोगों से मिलकर मोहम्मद साहब ने उन्हें अपना धर्म समझाया जिसमें ख़ास चीज़ एक निराकार को छोड़ कर और सब देवी देवताओं की पूजा को छोड़ देना और नेक काम करना था। किसी पर कोई असर न पड़ा। फिर उन्हों ने गलियों में खड़े होकर उपदेश देना शुरू किया। जहां वह बोलने खड़े होते लोग उन्हें बुरा भला कहने लगते। शोर मचाकर उनकी आवाज़ बन्द कर दी जाती। कई बार

उन्हें पत्थर मार मार कर घायल कर दिया गया। कई दिन वह वहां उपदेश देते रहे, लेकिन रोज़ यही हालत होती। आख़िर एक दिन लोगों ने उन्हें ज़बरदस्ती शहर से बाहर निकाल दिया। कई मील तक लोग मज़ाक़ उड़ाते और गालियां देते उनके पीछे गए। "पत्थरों की मार से उनकी दोनों टांगों से लहू बह रहा था।" ज़ैद ने उन्हें बचाने की कोशिश की, जिसमें एक पत्थर ज़ैद के सिर पर भी लगा। शहर से क़रीब तीन मील दूर आकर लोग वापिस लौट गए। मोहम्मद साहब और ज़ैद थक कर एक पेड़ के साए में बैठ गए। थोड़ी देर के बाद मोहम्मद साहब ने घुटने टेककर जिस तरह अल्लाह से दुआ मांगी वह यह थी—

"ऐ मेरे रब्ब ! अपनी कमज़ोरी, अपनी बेबसी और दूसरों के सामने अपने छोटेपन की मैं तुझ ही से शिकायत करता हूं। तू ही सब से बढ़कर दयावान है। निर्बलों का तू ही बल है। तू ही मेरा मालिक है। अब तू मुझे किसके हाथों में सौंपेगा ? क्या इन परदेसियों के हाथों में जो मुझे चारों तरफ़ से घेरे हैं ? या उन दुशमनों के हाथों में जिनका तूने मेरे घर के अन्दर मेरे ख़िलाफ़ पल्ला भारी कर रखा है ? अगर तू मुझसे नाराज़ नहीं है तो मुझे कोई सोच नहीं, मैं तो समझता हूं तेरी मुझ पर बड़ी दया है। तेरे दया भरे चेहरे की ज्योति (नूर) ही में मैं पनाह चाहता हूं। उसी से अंधेरा दूर हो सकता है और इस दुनिया और दूसरी दुनिया दोनों में शान्ति मिल सकती है। तेरा ग़ुस्सा मुझ पर न पड़े। जब तक तू ख़ुश न हो, ग़ुस्सा करना

तेरा काम है। तुझसे बाहर न किसी में कोई बल है और न कोई और चारा!"

मोहम्मद साहब के पास सिवाय परमात्मा के या अपने भीतर के विश्वास के अब कोई सहारा न था। तायफ़ से इस तरह निकाले जाने के बाद अगर वे मक्के जाते तो उनकी हालत और भी बुरी होती। वह कई दिन तक जंगल में रहे, और ज़ैद को मक्के भेजकर उन्हों ने वहां एक जानने वाले का घर अपने रहने के लिये ठीक किया। कई बरस तक वह इसी घर में रहे और सिर्फ़ काबे की यात्रा के दिनों में बाहर निकल कर बाहर से आने वाले यात्रियों में अपने धर्म का उपदेश देते रहे।

एक दिन यात्रा ही के दिनों में जब वह मक्के से कुछ उत्तर में अक़बह की पहाड़ी पर उपदेश दे रहे थे यसरब* के कुछ यात्रियों का ध्यान उनकी तरफ़ गया। मोहम्मद साहब के उपदेश और उनकी सच्चाई का इन लोगों पर असर हुआ। इनमें से ६ आदमियों ने इसलाम धर्म अपना लिया और अपने शहर जाकर, जो मक्के से २८६ मील था, लोगों से मोहम्मद साहब के उपदेशों का चर्चा किया।

अगले साल उनके साथ छै और आदमी यसरब से आए। ये यसरब के दो बड़े क़बीलों औस और ख़ज़रज के ख़ास लोगों में से थे। इन्हों ने भी इसलाम धर्म अपना लिया

*जिसे बाद में लोग 'मदीना' कहने लगे।

और दस्तखत कर के नीचे लिखे बचन लिख कर मोहम्मद साहब को दे दिये—

"हम एक ईश्वर के साथ किसी दूसरे को न जोड़ेंगे। यानी एक ईश्वर के सिवा किसी दूसरे की पूजा न करेंगे। न चोरी करेंगे न बदचलनी करेंगे। न अपने बच्चों की हत्या करेंगे। न जान बूझकर किसी पर झूठा इलज़ाम लगाएंगे। न किसी ऐसी बात में जो अच्छी होगी, पैग़म्बर के हुकुम को तोड़ेंगे। और सुख दुख दोनों में पैग़म्बर का पूरा साथ देंगे।"

इसलाम के इतिहास में यह "अक़बह का पहिला वादा" कहलाता है।

यसरब के लोगों के कहने पर मुहम्मद साहब ने अपने एक समझदार साथी मुसअब को इसलाम धर्म फैलाने के लिये उनके साथ यसरब भेजा। यसरब में एक साल तक मुसअब ने जिस होशियारी और धीरज के साथ अपने धर्म को फैलाया उसकी बहुत सी मिसालें मिलती हैं।

एक बार मुसअब किसी के घर में बैठा कुछ लोगों को उपदेश दे रहा था। इतने में उसैद नामी एक आदमी भाला लेकर उस घर में घुसा और कहने लगा—"तुम लोग यहां क्या कर रहे हो ? तुम कमज़ोर दिमाग़ के आदमियों को उनके धर्म से गिरा रहे हो ! तुम्हें अपनी जान प्यारी है तो यहां से भाग जाओ।" मुसअब ने बड़े ठण्डे दिल से जवाब दिया—"बैठ जाइये और हमारी बात सुनिये, अगर हमारी बात सुन कर आपको

अच्छी न लगे तो हम यहां से चले जायंगे।" उसैद ने अपना भाला ज़मीन में गाड़ दिया और बैठ कर सुनने लगा। मुसअब ने उसे इसलाम के बुनियादी असूल समझाये और क़ुरान के कई हिस्से पढ़ कर सुनाए। उसैद पर बहुत बड़ा असर हुआ। कुछ देर बाद उसने कहा—"इस धर्म में मैं किस तरह शामिल हो सकता हूँ ?" मुसअब ने जवाब दिया—"जाकर नहा-इये, और फिर आकर कहिये और मान लीजिये कि सिवाय एक ख़ुदा के दूसरा कोई ख़ुदा नहीं है और मुहम्मद उसका रसूल है।" उसैद ने ऐसा ही किया और वह मुसलमान हो गया।

इसी तरह की और भी बहुत सी बातें मुसअब के यसरब में धर्म फैलाने की मिलती हैं। नतीजा यह हुआ कि यसरब में मुसअब का उम्मीद से कहीं बढ़कर काम हुआ। घर घर नए धर्म का चरचा होने लगा। अगले साल सन् ६२२ ईसवी में, मुसअब के साथ ७० और आदमी उनमें से जिन्हों ने इसलाम धर्म अपना लिया था काबे की यात्रा के दिनों में मक्का आए। उनका इरादा था कि मोहम्मद साहब को यसरब ले जाकर मक्का वालों के ज़ुल्मों से उन्हें बचावें। मोहम्मद साहब के दिल में भी मक्का छोड़कर यसरब में अपने नए धर्म की क़िस्मत आज़माने का ख़याल पैदा हो चुका था।

आधीरात को उसी अक़बह की पहाड़ी पर बातचीत हुई। पिछले साल के वादे में ये टुकड़ा और जोड़ दिया गया—

"हम लोग (यसरब में) पैग़म्बर और उसके साथियों की उसी तरह हिफ़ाज़त करेंगे जिस तरह अपने बाल बच्चों की करते हैं।"

सबने क़सम खाई। इसे 'अक़बह का दूसरा वादा' कहते हैं।

मोहम्मद साहब ने अब अपने साथियों को लेकर यसरब में जा बसने का फ़ैसला कर लिया। लेकिन ख़ुद शहर छोड़ने से पहले वह अपने सब साथियों को वहां भेज देना चाहते थे। दो दो चार चार कर उनके बहुत से साथी धीरे धीरे यसरब के लिये चल दिये। मोहम्मद साहब, अबु बक्र और उनके घरों के लोग मक्के में रह गए।

क़ुरैश को इस का पता चला। उन्हों ने सोचा ऐसा न हो कि वहां जाकर मोहम्मद का बल और बढ़ जावे और कभी बाद में हमें और हमारे शहर को मोहम्मद से और ज्यादह नुक़सान पहुँचे। क़ुरैश की दुशमनी और भड़की। अबु सुफ़ियान मक्के का हाकिम था। उसने क़ुरैश के सरदारों को जमा करके तय कर दिया कि मोहम्मद को शहर से ज़िन्दा न निकलने दिया जाय। अगर कोई एक आदमी मोहम्मद की हत्या करता तो यह डर था कि बनी हाशिम ख़ानदान के लोग या मोहम्मद के साथी उस हत्या करने वाले से और उसके ख़ानदान वालों से बदला लेते। इस लिये तय किया गया कि हर ख़ानदान का एक एक आदमी जाकर एक साथ अपने अपने ख़ंजर मोहम्मद के बदन में भोंक दे।

रात को ये सब लोग मोहम्मद साहब के मकान के पास जमा हो गए। इनकी सलाह थी कि ठीक सुबह को ज्यों ही मोहम्मद साहब घर से निकलें उन पर हमला किया जाय।

दीवार के एक सूराख़ से इन्हों ने मोहम्मद साहब को बिछौने पर पड़ा देख लिया था। मोहम्मद साहब को पता चल गया। उन्हों ने अली को अपनी जगह बिछौने पर लिटा दिया। उसके ऊपर अपनी हरी चादर डाल दी और ख़ुद रात ही को पीछे के रास्ते घर से निकल गए।

मोहम्मद साहब सीधे अबु बक्र के घर गए। रातों रात दोनों मक्के से पैदल निकल कर शहर से तीन चार मील दूर एक पहाड़ी गुफ़ा के अन्दर जाकर छिप गए। तीन दिन तक ये लोग इसी गुफ़ा में रहे और चौथे दिन ऊंटों का बन्दोबस्त करके यसरब के लिये रवाना हो गए।

इस बीच में क़ुरैश ने ऐलान कर दिया था कि जो भी मोहम्मद को ज़िन्दा या मुरदा लाकर पेश करेगा उसे एक सौ ऊंट इनाम में दिये जावेंगे। बहुत से घुड़ सवार चारों तरफ़ उनकी खोज में निकले। अपना पीछा करने वालों से कई जगह बाल बाल बचते मोहम्मद साहब सोमवार ८ रबीउल अव्वल, २० सितम्बर सन् ६२२ ईसवी को यसरब पहुँचे।* थोड़े दिन बाद मोहम्मद साहब और अबु बक्र के घरवाले भी उनसे आकर मिल गए।

---

* शिबली, सफ़ा २५७.

यसरब वालों ने मोहम्मद साहब की बड़ी आव भगत की और उनके आने की ख़ुशी में अपने शहर का नाम 'यसरब' से बदल कर 'मदीन तुन्नबी' यानी 'नबी नगर' रख दिया। इसी से बाद में "मदीना" नाम पड़ा।

इसलाम के इतिहास में यह वही "हिजरत" है जिससे मुसलमानों का हिजरी सन् शुरू होता है। हिजरत का मतलब (धर्म के लिये) अपना घर छोड़ कर दूसरी जगह जाना है। इस दिन से ही मोहम्मद साहब और इसलाम दोनों की ज़िन्दगी में एक नया दरवाज़ा खुलता है।

कहा जाता है कि मुहम्मद साहब के मदीना पहुँचने से पहले कोई डेढ़ सौ मुसलमान मक्के से वहां पहुँच चुके थे। कुछ को मक्के वालों ने ज़बरदस्ती पकड़ कर रोक लिया था। जो लोग मदीने गए उनमें से कुछ को अपना धर्म बचाए रखने के लिए बहुत कुछ खोना पड़ा था। इनमें सुहैब नामी एक यूनानी था। सुहैब पहले एक ग़ुलाम रह चुका था। उसके मालिक ने उसे आज़ाद कर दिया था। आज़ाद होकर सुहैब ने मक्के में तिजारत शुरू की। थोड़े दिनों में वह मक्के के मालदार से मालदार सौदागरों में गिना जाने लगा। जब उसने मुसलमान होकर मक्के से मदीने जाना चाहा तो मक्के के लोगों ने उसे सिर्फ़ इस शर्त पर जाने दिया कि वह अपना सारा धन, दौलत और सारी जायदाद मक्के ही में छोड़ जावे और उस से हमेशा के लिए हाथ धो बैठे। सुहैब ने ऐसा ही किया। उसने अपना

सारा धन और माल मक्के ही में छोड़ दिया लेकिन अपने पैग़म्बर का साथ न छोड़ा।

सन् ६१० ईसवी से ६२२ ईसवी तक १३ साल के अन्दर जिस मज़बूती, विश्वास, धीरज और हिम्मत से, तरह तरह की मुसीबतें झेलते, मोहम्मद साहब ने उस सच्चाई के फैलाने को जारी रखा जिसे वह अपने देश और दुनिया दोनों के दुखों का एक ही इलाज समझते थे, दुनिया के इतिहास में वह एक अनोखी चीज़ थी। इन १३ साल के अन्दर ले देकर क़रीब तीन सौ आदमियों ने उनके धर्म को अपनाया जिनमें १०१ इथियोपिया जा चुके थे और बाक़ी बहुत से अब अपने घर बार और अपनी जायदादें हमेशा के लिये छोड़कर अपने पैग़म्बर के साथ मदीने आगए थे।

"अरब के पैग़म्बर ने लगातार १३ साल तक हर तरफ़ से जिस तरह की नाउम्मेदी, धमकियों, बेपरवाही और तकलीफ़ों का सामना करते हुए, अपने विश्वास को अटल रखा, लोगों को बुरे कामों के लिये पछताने का उपदेश दिया और अपने शहरवालों को जो एक ईश्वर के मानने से इनकार करते थे ईश्वर के ग़ुस्से का डर दिखाया, उस सारी कोशिश की दूसरी मिसाल दुनिया के इतिहास के सफ़ों में ढूंढ़ने से भी नहीं मिलती। थोड़े से वफ़ादार मरदों और औरतों को साथ लिये, और अपनी आगे की जीत पर भरोसा रखते हुए, वह सब तरह

की बेइज़्ज़ती, धमकियों और मुसीबतों को धीरज के साथ बरदाश्त करते रहे।*"

*Life of Mohammet, by Sir William Muir, Vol. IV, PP. 314-315.

मदीने में राजा की हैसियत से



मदीने पहुँच कर धीरे धीरे मोहम्मद साहब और इसलाम दोनों के दिन फिरने शुरू हुए। इसलाम के मानने वालों की तादाद ज़ोरों से बढ़ने लगी। इनमें दो तरह के लोग ज्यादह थे। एक वह जो मक्के से आए थे और 'मोहाजिर' यानी हिजरत करने वाले कहलाते थे और दूसरे वह मदीना वाले जिन्हों ने इन्हें मदीना बुलाकर पनाह दी थी और जो 'अन्सार' यानी 'मददगार' कहलाते थे। बहुत से मोहाजिर उस वक़्त बेसामान और बेघरबार के थे। मोहम्मद साहब की सलाह से एक एक अन्सार ने एक एक या दो दो मोहाजिर को अपना भाई बनाकर अपने घर में रख लिया। इस तरह एक नया 'भाईचारा' मदीने में बन गया और अन्सार और मोहाजिर में एक दूसरे से प्रेम बढ़ता गया। पहले कुछ साल तक यह रिवाज रहा कि जब कोई ऐसा अन्सार मरता था जिसने किसी मोहाजिर को अपना "भाई" बना रखा था तो उसकी सारी जायदाद उस मोहाजिर

को मिल जाती थी। बाद में इस की ज़रूरत न रही और यह रिवाज बन्द हो गया।

मदीने के दो सबसे बड़े क़बीलों बनी औस और बनी ख़ज़रज में १२० साल से लगातार लड़ाई चली आती थी। शहर में कभी किसी का ज़ोर होता था और कभी किसी का। नतीजा यह था कि शहर का अमन, शहर की सुख शान्ति हमेशा ख़तरे में रहती थी। अब इन दोनों क़बीलों के जो जो लोग नए धर्म को मानने लगे उनमें इस पुराने झगड़े की जगह एकता और प्रेम दिखाई देने लगा। इस तरह सदियों की इस फूट और १२० साल की लड़ाइयों के हमेशा के लिये मिट जाने और शहर में फिर से सुख और शान्ति क़ायम होने की आस बंधी। जहां न कोई सरकार थी और न कोई हाकिम, जहां सिवाय तलवार के आपस के झगड़ों के फ़ैसले का कोई तरीक़ा न था, वहां अब मोहम्मद साहब के ज़रिये एक ठीक ठीक सरकार क़ायम होने लगी, और इन्साफ़ के साथ लोगों के झगड़े चुकाए जाने लगे। इस सब से इसलाम के फैलने में बड़ी मदद मिली।

मोहम्मद साहब के उपदेश देने और मुसलमानों की नमाज़ के लिये अब एक अलग जगह की ज़रूरत हुई। दो यतीम भाइयों ने अपनी ज़मीन मुफ़्त देना चाहा। लेकिन मोहम्मद साहब के हुकुम से अबु बक्र ने उन्हें क़ीमत दे दी। खजूर के अनगढ़ तनों के खम्भों पर खजूर ही की टहनियों और पत्तियों

से एक बहुत बड़ा छप्पर छा दिया गया जिसके इधर उधर ईंट और गारे की दीवारें खड़ी कर दी गईं। यही मदीने की सबसे पहली मसजिद थी। उसका एक हिस्सा परदेसियों के ठहरने और बेघर के लोगों के रहने के लिये छोड़ दिया गया। रात को रोशनी के लिये बहुत दिनों तक तेल बत्ती की जगह खजूर की छिपटियां जला दी जाती थीं।

कुछ ही दिनों में शहर की हकूमत का सारा बोझ मोहम्मद साहब को अपने ऊपर लेना पड़ा। अरब के दूसरे नगरों के हाकिमों की तरह मदीने का हाकिम भी वहां के सब ख़ानदानों के मुखियों की राय से चुना जाता था। मुसलमानों की नज़रों में मोहम्मद साहब से बढ़कर कोई दूसरा हाकिम न हो सकता था। जिन लोगों ने इसलाम अभी तक नहीं अपनाया था वह भी बनी औस और बनी ख़ज़रज की १२० साल की घरेलू लड़ाइयों से उकता गए थे। इसलिए मदीने के सब लोगों ने मोहम्मद साहब को, जो अभी तक 'अल अमीन' कहलाते थे, क़रीब क़रीब एक राय से शहर का हाकिम चुना। इस बोझ को अपने ऊपर लेते ही मोहम्मद साहब ने शहर के लोगों के नाम एक ऐलान निकाला जिसके कुछ टुकड़े ये थे—

"अल्लाह के नाम पर जो सबके ऊपर दया करने वाला और रहीम है। अब्दुल्ला के बेटे और अल्लाह के रसूल मोहम्मद की तरफ़ से, सब मुसलमानों और उन सब लोगों के नाम, चाहे वे, किसी भी नसल के हों, जो एक साथ मिलकर रहने को तय्यार हैं। ये सब लोग एक

'उम्मत' (क़ौम) होंगे......किसी (बाहर वाले) की सुलह होगी तो सबसे और लड़ाई होगी तो सबसे। इनमें से किसी को यह हक़ न होगा कि वह सिर्फ़ अपने मज़हब वालों के दुश्मनों से अलग सुलह करले या उनके साथ अलग लड़ाई छेड़ दे।......औफ़, नज्जार, हारिस, जश्म, सालबाह, औस क़बीलों की अलग अलग शाख़ों के यहूदी और सब लोग जो मदीने में आकर बस गए हैं, मुसलमानों के साथ मिलकर एक 'मुत्तहिदा उम्मत' (मिली हुई क़ौम) समझे जावेंगे। वे अपने अपने धर्मों का उतनी ही आज़ादी के साथ पालन कर सकेंगे जितनी आज़ादी के साथ मुसलमान अपने धर्म का।......जो जुर्म करेगा उसे सज़ा दी जावेगी......मुसलमानों का धर्म (फ़र्ज़) होगा कि वह हर ऐसे आदमी से अलग रहें जो कोई जुर्म करे या किसी को सतावे या किसी पर ज़ुल्म करे। कोई किसी जुर्म करने वाले की तरफ़दारी न करेगा चाहे वह जुर्म करने वाला उसका कितना ही पास का रिश्तेदार क्यों न हो।......जो लोग इस ऐलान को मान लेंगे उनमें आपस में अगर कभी कोई झगड़ा होगा तो वह अल्लाह के नाम पर मोहम्मद के सामने लाया जावे...।"

मदीने के सब लोगों ने इस ऐलान को बड़ी ख़ुशी के साथ मान लिया।

मदीने के बाहर भी चारों तरफ़ बहुत से ईसाई, यहूदी और दूसरे क़बीले थे जिनके साथ अपना बर्ताव तय करना ज़रूरी था। प्रेम और शान्ति के साथ उनके कानों तक नए धर्म का संदेसा पहुँचाना भी ज़रूरी था। इनमें से जिन लोगों ने मदीने

वालों के साथ मिलकर एक क़ौम और एक राज होकर रहना पसन्द किया उनको ख़ुशी से अपना लिया गया, और जिन्होंने चाहा उनके साथ सुलह की शर्तें तय हो गईं। इन दिनों सिनाई पहाड़ के ऊपर सेण्ट कैथराइन के ईसाई मठ के महन्तों और अरब के और सब ईसाइयों के लिये मोहम्मद साहब का जो ऐलान निकला वह बहुत ही मारके का था। ऊपर आ चुका है कि उस ज़माने के ईसाई मूर्तियां पूजते थे और उनके गिरजे मूर्तियों से भरे रहते थे। ऐलान के कुछ हिस्से ये हैं—

"अल्लाह के नाम पर जो सबके ऊपर दया करने वाला और रहीम है! अल्लाह के रसूल मोहम्मद की तरफ़ से सिनाई पहाड़ के महन्तों और आम तौर पर सब ईसाइयों के लिये।

"सचमुच अल्लाह सबसे बड़ा, सबसे महान् है, तमाम पैग़म्बर उसी के पास से आए, और कहीं नहीं लिखा है कि अल्लाह ने किसी के साथ बेइन्साफ़ी की हो······

"मेरे धर्म के मानने वालों में से चाहे कोई बादशाह हो, चाहे कुछ भी हो, जो कोई मेरे इस वादे और इस सौगन्ध को जो नीचे के ऐलान में दर्ज है तोड़ने की हिम्मत करेगा, वह अल्लाह के वचन को तोड़ने, सौगन्ध को झुठलाने और (ईश्वर न करे!) अपने ईमान को तोड़ने का पाप करेगा।

"जब कभी कोई ईसाई महन्त यात्रा करते हुए (मदीने के राज के अन्दर) किसी पहाड़ या पहाड़ी, गांव या बस्ती में, समुद्र पर या रेगिस्तान में, या किसी मठ, गिरजे या दूसरे इबादतख़ाने में जाकर

ठहरेगा तो समझना चाहिये कि उसके जान माल का जी जान से बन्दोबस्त और उनकी हिफ़ाज़त करने के लिये मैं ख़ुद धर्म के सब मानने वालों समेत उसके साथ हूं, क्योंकि ये लोग हमारी ही उम्मत (क़ौम) का हिस्सा हैं और उनसे हमारी इज़्ज़त है।

"मैं इस ऐलान के ज़रिये अपने सब अफ़सरों को हुकुम देता हूं कि वे इन लोगों से किसी तरह का टैक्स या और कोई चुङ्गी वग़ैरह न मांगें, उन्हें किसी ऐसी बात के लिये सताना नहीं चाहिये।

"किसी दूसरे को उनके क़ाज़ियों (जजों) या सरदारों को बदलने का हक़ न होगा, और न कोई उन्हें इन जगहों से हटा सकेगा।

"सड़क पर चलते हुए कोई उन्हें किसी तरह का दुःख न देगा।"

"किसी को उनसे उनके गिरजे छीनने का हक़ न होगा।

"और न उनके जजों, सरदारों, महन्तों, नौकरों, चेलों या उनके किसी भी आदमी से किसी तरह का टैक्स लिया जायगा, न उन्हें और किसी तरह दिक़ किया जायगा, क्योंकि मेरे इस वादे और ऐलान में वह और उनके सब आदमी शामिल हैं।"

"जो ईसाई मामूली घरबारी हैं और अपने माल और रोज़गार में से टैक्स दे सकते हैं, उनसे भी जितना ठीक होगा उससे ज़्यादह हरगिज़ न लिया जायगा।

"ईश्वर का साफ़ हुकुम है कि इसके सिवा उनसे और कुछ न लिया जायगा।

"अगर कोई ईसाई औरत किसी मुसलमान के साथ शादी कर ले, तो वह मुसलमान उसके रास्ते में कोई रुकावट न डालेगा, न उसे

गिरजा जाने से रोकेगा, न दुआ करने से और न किसी तरह अपने धर्म पर चलने से।

[किसी भी यहूदी या ईसाई मां के मुसलमान बेटे का धर्म (फ़र्ज़) है कि मां को टट्टू वग़ैरह पर बैठाकर उसके गिरजा के दरवाज़े तक पहुंचा दे, और अगर वह इतना ग़रीब हो कि टट्टू का इन्तज़ाम न कर सके, या अगर मां इतनी बूढ़ी और कमज़ोर हो कि सवारी पर न बैठ सके तो मुसलमान बेटे का धर्म है कि मां को अपने कन्धों पर बैठाकर उसके पूजाघर तक पहुँचा दे।]

"अपने गिरजों की मरम्मत करने में कोई उन्हें न रोक सकेगा, और अगर ईसाइयों को अपने गिरजों या मठों की मरम्मत के लिये या अपने धर्म की किसी दूसरी बात के लिये मदद की ज़रूरत हो तो मुसलमानों का धर्म है कि उनको मदद दें।

... ...

"उनके ख़िलाफ़ कोई हथियार न उठावेगा, हां उनकी हिफ़ाज़त के लिये हथियार उठाना मुसलमानों का धर्म होगा। अगर देश के बाहर की किसी ईसाई ताक़त के साथ मुसलमानों की कभी लड़ाई हो, तो देश के अन्दर के किसी ईसाई के साथ उसके ईसाई होने की वजह से बेइज़्ज़ती का सलूक न किया जायगा।

"इस ऐलान से मैं हुकुम देता हूं कि जब तक दुनिया रहे तब तक मेरे धर्म का कोई मानने वाला मेरे इस हुकुम के ख़िलाफ़ चलने या अमल करने की हिम्मत न करे। जो मुसलमान इसके ख़िलाफ़ चलेगा

वह ईश्वर और उसके रसूल से बाग़ी और अपने धर्म से 'मुरतद' (फिरा हुआ) समझा जायगा।*"

इस ऐलान को हज़रत अली ने अपने हाथ से लिखा, बतौर गवाहों के मोहम्मद साहब के सोलह साथियों ने इस पर दस्तख़त किये, और तारीख़ ३ मोहर्रम, सन् २ हिजरी को मोहम्मद साहब ने मसजिद में बैठकर अपने हाथ से उस पर अपनी मोहर लगाई।

मदीने और आसपास के बढ़ते हुए देश के हाकिम या राजा की हैसियत से मोहम्मद साहब ने अलग अलग मज़हबों के लोगों के साथ कभी किसी तरह का भेदभाव (फ़रक़) नहीं किया, सबको अपने अपने मज़हबों पर चलने की पूरी आज़ादी दी और मज़हबी फ़रक़ के रहते हमेशा सबको "एक उम्मत" यानी एक क़ौम या एक राष्ट्र या एक नेशन कहकर बयान किया।

* "A Description of the East and other Countries," by Richard Pococke, Bishop of Meath; vol. I, P. 268. Edn. 1743.

इसलाम फैलाने का तरीक़ा



मदीने में पहुंच कर पहली बार मोहम्मद साहब को खुले तौर पर, पूरी शान्ति और आज़ादी के साथ, अपने विचारों को फैलाने का मौक़ा मिला। अब वह रोज़ बड़े जोश के साथ उपदेश देने लगे। हज़ारों आदमी उनका पयाम (संदेसा) सुनने के लिए जमा होते थे। उनके इस काम में किसी के साथ किसी तरह के भी ज़ोर ज़बरदस्ती की कोई जगह न थी। मदीने में जिन दिनों उनकी ताक़त अपने पूरे ज़ोर पर थी उन दिनों की क़ुरान में एक साफ़ आयत है—

" ला इकराह फ़िद्दीन "

यानी—"धर्म के मामले में किसी तरह की ज़बरदस्ती नहीं होनी चाहिये।" (२-२५६)

क़ुरान में शुरू से आख़ीर तक जगह जगह इस तरह की आयतें मौजूद हैं जिनमें यह बताया गया है कि अपने धर्म को लोगों में किस तरह फैलाया जाय। इनमें शुरू की कुछ आयतें ये हैं—

"लोगों को अपने रब्ब (पालनहार) के रास्ते पर आने के लिए बुलाओ तो होशियारी के साथ और बड़े अच्छे शब्दों में समझाओ। उनसे बहस करो तो अच्छे से अच्छे और मीठे लफ़्ज़ों में करो।" (१६-१२५)

"और जो कुछ वह कहें उसे सब्र के साथ सुनो और बरदाश्त करो और जब उनसे अलहदा हो तो बड़े प्रेम और ख़ूबी के साथ अलहदा हो।" (७३-१०)

"जिन लोगों ने तुम्हारे धर्म को मान लिया है उनसे कहदो कि वे उन लोगों पर जो तुम्हारी बात नहीं मानते और जिन्हें ईश्वर से अपने कामों के फल मिलने का डर नहीं है किसी तरह का ग़ुस्सा न करें। जो कोई नेकी करेगा अपनी ही आत्मा के लिए और जो कोई बुराई करेगा अपनी ही आत्मा के लिए, फिर सबको उसी रब्ब के पास लौटकर जाना है।" (४५-१४, १५)

"तुम्हारा काम, या किसी रसूल का काम, इससे ज़्यादह और कुछ नहीं कि साफ़ साफ़ शब्दों में अपनी बात कह दो। फिर अगर वे पीठ मोड़कर चल दें तो चलदें, तुम्हारा काम सिर्फ़ अपनी बात समझा देना ही तो था।" (१६-३५,८२)

"जिन लोगों के पास दूसरी धर्म की किताबें हैं उनके साथ बहस न करो और अगर करो तो बहुत ही मीठे शब्दों में करो, फिर जो ज़बरदस्ती करे और न माने वह न माने, उनसे कहो कि हम उस किताब को भी मानते हैं जो ईश्वर ने हमें दी है और उसे भी मानते

हैं जो ईश्वर ने तुम्हें दी है, हमारा और तुम्हारा अल्लाह एक ही है, और उसी एक अल्लाह के सामने हम सर झुकाते हैं।" (२९, ४६)

"इन्ही विचारों की तरफ़ लोगों का ध्यान दिलाते रहो, और जिस तरह तुम्हें हुकुम दिया गया है उसी तरह ठीक ठीक ख़ुद अपनी ज़िन्दगी बसर करो, दूसरों के वहमों में मत आओ, और कह दो कि मैं अल्लाह की सब किताबों को मानता हूं, मुझे इन्साफ़ का हुकुम है, अल्लाह हमारा और तुम्हारा सबका रब्ब है। जो तुम करोगे उसका तुम्हें फल मिलेगा और जो मैं करूंगा उसका मुझे फल मिलेगा, हमारे बीच में कोई झगड़ा नहीं है, अल्लाह हम सबको मिला देगा, हम सबको उसी के पास लौटकर जाना है।" (४२-१५)

"फिर भी वे तुम्हारी न सुनें और मुंह मोड़ लें, तो तुम उनके कोई निगहबान बनाकर नहीं भेजे गए हो, तुम्हारा काम सिर्फ़ समझा देना है।" (४२-४८)

"अगर तुम्हारा रब्ब चाहता तो सचमुच दुनियां के सब लोग एक ख़याल के हो जाते, तो क्या तुम किसी के साथ ज़बरदस्ती करोगे कि सब तुम्हारी ही बात मान लें?" (१०-९९)

"और हमने तुम्हें सिर्फ़ इसलिये भेजा है कि सब आदमियों को नेक कामों के बदले में अच्छे फल की और बुरे कामों के बदले में बुरे फल की बात बताओ।" (३४-२८)

ऊपर की सब आयतें तब की हैं जब मुहम्मद साहब मक्के में थे।

नीचे लिखी आयतें उस ज़माने की हैं जब मुहम्मद साहब मदीने में थे, ये और भी ज्यादा साफ़ हैं—

"धर्म के मामले में किसी तरह की भी ज़बरदस्ती नहीं होनी चाहिए।" (२-२५६)

"अल्लाह और उसके रसूल का कहना मानो। न मानो तो तुम्हारी मरज़ी, रसूल का काम साफ़ साफ़ कह देना भर है।" (६४-१२)

"वह तुमसे हुज्जत करें तो उनसे कह दो कि मैंने अपने आपको बिलकुल अल्लाह की मरज़ी पर छोड़ दिया है। यही इसलाम शब्द के माइने हैं। जिन्होंने मेरी बात मान ली उन सब ने भी अपने को उसी ईश्वर की मरज़ी पर छोड़ दिया है। जिन लोगों के पास दूसरी धर्म की किताबें हैं या जिनके पास नहीं हैं उन सबसे कहो कि तुम भी अपने को एक ईश्वर की मरज़ी पर छोड़ दो। वे मान जायें तो अच्छा करेंगे। न मानें तो तुम्हारा काम कह देना ही है, अल्लाह अपने सब बन्दों को देखता है।" (३-१९)

"तुम में इस तरह के आदमी होने चाहियें जो लोगों को सबके साथ नेकी करने का उपदेश दें, सबको नेक कामों में लगाएं और बुरे कामों से बचाएं, ऐसे लोगों का ही भला होगा।" (३-१०३)

"हमने हर क़ौम के लिए पूजा के अलग अलग तरीक़े ठहरा दिये हैं, जिन पर वह चलते हैं, इसलिए इस बात पर नहीं झगड़ना चाहिए। तुम्हें उन्हे सिर्फ़ ईश्वर की तरफ़ बुलाना चाहिए, सचमुच तुम सीधे रास्ते पर हो, और जो वे तुमसे झगड़ा करें तो कह दो अल्लाह सब जानता है कि तुम क्या करते हो।" (२२-६७, ६८)

"और जो ग़ैर-मुसलमानों में से कोई तुम्हारी पनाह में आना चाहे, तो उसे अपने पास बुला लो, जिससे वह तुम्हारे पास रह कर अल्लाह का कलाम यानी अल्लाह की बताई बातें सुने, और जो इस पर भी वह तुम्हारी बात न माने तो उसे होशियारी से उसके घर तक या किसी हिफ़ाज़त की जगह तक पहुंचा दो, क्योंकि वे लोग अनजान हैं।" (९-६)

एक बार किसी अरब ने जो पुराने धर्म का मानने वाला था हज़रत अली से पूछा कि अगर हम इसलाम धर्म के बारे में या किसी और बात के बारे में कुछ जानने के लिये पैग़म्बर के पास जाना चाहें तो हमें कुछ डर तो नहीं है ? हज़रत अली ने इसी ऊपर की आयत को नक़ल करते हुए जवाब दिया कि किसी को कोई डर नहीं है। (इब्ने अब्बास)

"तुम्हें उनमें इस तरह के आदमी मिलते रहेंगे जो एक बार बात मान कर उससे फिर जावें, यानी दग़ा करें, उन्हें माफ़ कर देना और छोड़ देना, सचमुच अल्लाह उन लोगों को प्यार करता है जो दूसरों पर अहसान करते हैं।" (५-१३)

मुहम्मद साहब का अपने धर्म को फैलाने का तरीक़ा ज़िन्दगी भर ऐसा ही रहा जैसा क़ुरान की इन आयतों में बताया गया है। उनकी सारी ज़िन्दगी में एक भी मिसाल ऐसी नहीं मिलती जिसमें उन्हों ने किसी को भी तलवार के ज़ोर से या किसी तरह का दबाव डाल कर अपने धर्म में शामिल किया हो, और न उन्हों ने किसी क़बीले या गिरोह को अपने धर्म में

लाने के लिए कभी किसी पर भी चढ़ाई की या एक भी लड़ाई इस काम के लिए लड़ी।* वह धर्म में दूसरों को उतनी ही आज़ादी देते थे जितनी वह दूसरों से अपने लिए चाहते थे।

मदीने में पहुँचने के बाद मुहम्मद साहब ने अपने धर्म का फैलाने के लिए मदीने से बाहर के दूर दूर के क़बीलों में समझदार आदमी भेजने शुरू किये। आम तौर पर जिस दिन उन्हें किसी ऐसे आदमी को कहीं भेजना होता था वह उसे बहुत सवेरे अपने पास बुलाते थे। सुबह की नमाज़ के बाद, फिर से ईश्वर की तारीफ़ कर और दुआ मांग कर वे उस आदमी को यों समझाते थे—

"अल्लाह के बन्दों के साथ मिलने जुलने में अल्लाह के हुकुम को न तोड़ना। आदमियों का कोई काम जिस किसी को सौंपा जाता है, वह अगर सचाई से लोगों की सेवा नहीं करता तो अल्लाह उसके लिये जन्नत (स्वर्ग) का दरवाज़ा बन्द कर देता है।

"लोगों के साथ नरमी से बर्त्ताव करना, किसी से सख़्ती न बरतना। उनके दिलों को ख़ुश रखना। उन्हें बुरा न कहना। जब वे तुमसे पूछें—'स्वर्ग की कुंजी क्या है?' तो तुम जवाब देना—'एक ईश्वर की सचाई और नेकी में विश्वास करना और नेक काम करना

*तफ़सीरुल क़ुरान, लेखक सैय्यद अहमद ख़ाँ, जिल्द ४; The Preaching of Islam, by T. W. Arnold, ch II., P 33; The Holy Quran by Mohammad Ali, P. 97.

यही स्वर्ग की कुंजी है।"* लिखा है कि ये उपदेश देने वाले जिन लोगों में उपदेश के लिये भेजे जाते थे उन्हीं की बोली बोलने लगते थे और उसी में उन्हें समझाते थे। मुहम्मद साहब को जब इसकी ख़बर मिली तो उन्हों ने कहा—"अल्लाह के बन्दों की तरफ़ अल्लाह का बताया उनका सब से बड़ा धर्म (फ़र्ज़) यही है।" इब्न साद, १० †

---

* Life of Mohammad, by Mirza Abul Fazal, P. 144.

† The Preaching of Islam, by T. W. Arnold, P. 25.

मदीने पर क़ुरैश के हमले

मुहम्मद साहब का धर्म मानने वालों की तादाद अब ज़ोरों के साथ बढ़ने लगी। इसके साथ साथ मदीने का राज और मदीने का बड़प्पन भी बढ़ रहा था। अरब के अन्दर मक्के से सिर्फ़ २८६ मील दूर एक और बराबर के राज का क़ायम होना और बढ़ते जाना क़ुरैश कब सह सकते थे। मक्के और वहां के मन्दिर काबे दोनों का पुराना बड़प्पन भी अब घटने लगा। क़ुरैश जानते थे कि अगर मुहम्मद की ताक़त को बढ़ने दिया गया तो एक न एक दिन मक्के का पुराना धर्म और मक्के का बड़प्पन मिट जायगा।

क़ुरैश इसका इलाज सोचने लगे। उन्हों ने मुहम्मद और मदीने को ताक़त को कुचल देने का फ़ैसला किया। जो थोड़े मुसलमान मक्के में रह गए थे उन्हें वे बराबर तकलीफ़ें देते रहे। धावे मार मार कर उन्हों ने मदीने वालों के शहर से बाहर चरते हुए ऊंटों और घोड़ों को उड़ा ले जाना शुरू किया। मदीने वालों की तरफ़ से शुरू में इसका कोई जवाब नहीं दिया गया।

थे, पर जो क़ुरैश के डर के मारे मुहम्मद साहब का साथ न दे सकते थे।

फिर भी हुदैबियाह की सुलह से मुहम्मद साहब का असर साफ़ बढ़ा।

मक्के की दूसरी यात्रा

एक साल बीतने पर, जैसा तय हो चुका था, मुसलमानों के मक्के जाने का वक्त आया। सन् ६२९ ईसवी में २००० मुसलमानों को साथ लेकर काबे की हज्ज के लिए मुहम्मद साहब फिर मक्के की तरफ़ चले। फिर इन २००० में से किसी के पास कोई हथियार न था। उनके कपड़े हाजियों के कपड़े थे। इनमें जो लोग सात साल से अपने घरों से निकले हुए थे मक्के पहुँचते ही उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।

"सचमुच मक्के की घाटी में जो चीज़ उस वक्त देखने को मिली वह दुनिया के इतिहास (तारीख़) में अनोखी थी। मक्के के सब छोटे बड़े लोगों ने तीन दिन के लिये उस पुराने शहर को ख़ाली कर दिया। हर घर सूना पड़ा था। जब वे चले गए तो अपनों से बिछुड़े मुसलमान, जो बरसों अपने घरों से दूर रह चुके थे, एक बहुत बड़ी तादाद में अपने नए साथियों को लेकर फिर अपने बचपन के ख़ाली घरों में आए और थोड़े से वक्त में उन्होंने हज्ज की रस्में पूरी कीं। मक्का वाले चारों तरफ़ की पहाड़ियों पर, खेमों में या घाटियों के साए

में जमा हो गए और अबु .कुबैस की ऊंची पहाड़ी पर से नीचे के यात्रियों को अपने पैग़म्बर के साथ साथ काबे के चारों तरफ़ चक्कर लगाते (परिक्रमा तवाफ़ करते) और जैसा पुराना रिवाज था सफ़ा और मरवा की पहाड़ियों के बीच तेज़ी से दौड़ते हुए देखते रहे। वे बड़े शौक़ के साथ इतनी दूर से हर आदमी के चेहरे को देखते थे, इस उम्मीद में कि हो सकता है उन यात्रियों में उन्हे किसी पुराने खोए हुए रिश्तेदार या साथी का चेहरा दिखाई दे जावे। बच्चे के पैदा होने के दरदों से कहीं ज़्यादह दरदों के साथ इसलाम का जन्म हुआ। ऐसे दरदों में ही इस तरह की चीज़ देखने को मिल सकती थी।"*

मुहम्मद साहब और उनके साथियों ने काबे की सब पुरानी रस्मों को अदा किया और तीन दिन तक बड़े झुक कर, बड़ी नरमी, बड़े प्रेम और बड़े मिठास के साथ मक्के में रह कर चौथे दिन सब के सब बाहर चले आए। यह बात ध्यान में रखने की है कि जब मुहम्मद साहब और उनके साथी काबे के चक्कर लगा रहे थे और सब रस्में अदा कर रहे थे, और जब कि उनके दिलों में एक निराकार अल्लाह के सिवा दूसरे का ख़याल न था, काबे के ३६० बुतों में सबके सब काबे के अन्दर मौजूद थे और मुहम्मद साहब या उनके किसी साथी ने कोई बात भी ऐसी नहीं की, जिससे किसी बुत की बेइज़्ज़ती समझी जाती या जिससे किसी पुराने ख़याल के मक्का वालों का दिल

*"Life of Mohamet," by Sir W. Muir, P. 420

दुखता। मक्के के लोग मुसलमानों के इस बर्ताव को देख कर दंग रह गए और उन्हों ने तसल्ली की सांस ली। मुसलमानों के मदीने चल देने पर वे फिर अपने अपने घरों में आगए।

मदीने में मुहम्मद साहब को आए जब दो साल हो गए तो पता चला कि १००० क़ुरैश ७०० ऊंटों और १०० घोड़ों समेत मदीने पर हमला करने आ रहे हैं। मुहम्मद साहब की उम्र ५५ साल की थी। अपने उस धर्म का उपदेश देते, जिसे वह दुनिया के लिए ईश्वर का संदेसा मानते थे, उन्हें १५ साल हो चुके थे। इन १५ साल के अन्दर बल्कि ५५ साल के अपने सारे जीवन में, सिवाय एक मौक़े के जब कि लड़कपन में 'हरबे फ़िजार' के अन्दर (एक लड़ाई जिसका पहले ज़िक्र आ चुका है) वह अपने चचा को तीर उठा उठा कर दे रहे थे, आज तक उन्हों ने कभी किसी लड़ाई में किसी तरह का भी हिस्सा न लिया था। लेकिन आज शहर भर के लोगों की जान माल की हिफ़ाज़त का बोझ उनके कन्धों पर था। जैसी उनकी आदत थी, रोज़े (उपवास) और नमाज़ (प्रार्थना) के ज़रिये उन्हों ने अपने रब्ब से हिदायत मांगी। क़ुरान में पहली बार लड़ाई की इजाज़त की आयतें इस तरह उतरीं—

"जिनसे और लोग लड़ने के लिये आते हैं उन्हें भी लड़ने की इजाज़त दी जाती है, क्यों कि उन पर यह ज़ुल्म है। सचमुच अल्लाह में उन लोगों की मदद करने की ताक़त है जिन्हें सिर्फ़ यह कहने के जुर्म में कि—'एक अल्लाह ही हमारा रब्ब है'—बेइन्साफ़ी से उनके घरों से निकाल दिया गया है!

"अगर अल्लाह इस तरह कुछ लोगों (आततइयों या फ़िसा-दियों) को दूसरे लोगों से न हटवाता तो सचमुच दुनिया के मठ, गिरजे

यहूदियों के मन्दिर और सब दूसरे (धर्म वालों के) पूजाघर जिनमें अल्लाह का नाम बार बार लिया जाता है कभी के गिरा दिये गए होते।" (कुरान २२-३८ से ४०)

"अल्लाह की राह में उन लोगों से लड़ो जो तुम्हारे साथ लड़ें, लेकिन हद से कभी न बढ़ो, सचमुच अल्लाह हद से बढ़ने वालों से कभी प्रेम नहीं करता।

"और जो वे लड़ना बन्द करदें तो तुम सिवाय उन लोगों के जो ज़ुल्म करते रहें और किसी के साथ दुशमनी जारी न रखो।" (२-१९०, १९३)

मुहम्मद साहब या उनके साथियों की तसल्ली न हुई। अपने बचाव के नाम पर भी उनका दिल लड़ाई से हटता था। वह सोचते थे कि जो फ़ौज मक्के से आ रही है उसमें बहुत से हमारे नज़दीकी रिश्तेदार हो सकते हैं। ये और वे सब एक ही दादा की औलाद थे। ठीक उसी तरह का धर्म संकट अब मुसलमानों के सामने था, वह उसी तरह की उलझन में पड़े हुए थे जिस तरह की उलझन में कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन। मुहम्मद साहब ने फिर रोज़ा रखा और दुआ मांगी। अपने दिल में बैठे हुए ईश्वर से उन्हें हुकुम मिला—

"तुम्हें लड़ने की इजाज़त दी गई है लेकिन तुम्हें उससे नफ़रत है। हो सकता है कि तुम एक ऐसी चीज़ से नफ़रत करते हो जो तुम्हारे लिये भलाई की हो, और तुम्हें ऐसी चीज़ से प्रेम हो जो तुम्हारे लिये बुरी हो। और अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।")२-२१६)

"क्या तुम ऐसे लोगों से न लड़ोगे जिन्होंने पहले ख़ुद लड़ाई शुरू की।" (९-१३)

"और तुम्हें क्या हो गया है कि तुम अल्लाह की राह में कमज़ोरों, औरतों और बच्चों की हिफ़ाज़त के लिये भी नहीं लड़ते।" (४-७५)

सिर्फ़ ३१३ आदमियों को साथ लेकर मुहम्मद साहब मक्के से आने वाली फ़ौज को रोकने के लिये निकले। क़ुरैश मक्के से आधी दूर आ चुके थे। 'बद्र' नाम की हरी भरी घाटी में (६२४ ई०) दोनों फ़ौजों में ख़ूब घमसान की लड़ाई हुई। मदीने की फ़ौज में धर्म और इन्साफ़ के नाम पर लड़ने वालों का जोश था। क़ुरैश को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। मदीने वालों के १४ और क़ुरैश के ४९ आदमी मैदान में काम आए। और इतने ही क़ैद कर लिये गए।

क़रीब क़रीब सब देशों में उन दिनों रिवाज था कि जो लोग लड़ाई में क़ैद कर लिये जाते थे उन्हें या तो मार डाला जाता था या ग़ुलाम बनाकर रखा जाता था। पर इस मौक़े पर मुहम्मद साहब के हुकुम से इनमें से बहुत से जो ग़रीब थे, इस वादे पर छोड़ दिये गए कि वे फिर कभी मुसलमानों या मदीना वालों के ख़िलाफ़ हथियार न उठावेंगे और बाक़ी से कुछ हरजाना लेकर उन्हें आज़ाद कर दिया गया। कुछ क़ैदियों से जो पढ़े लिखे थे यह काम लिया गया कि उनमें से हरेक दस दस मदीने वालों को लिखना पढ़ना सिखा दे और चला जाय। जितने दिनों तक ये क़ैदी मदीने में रहे उतने दिनों बराबर—

"मुहम्मद के हुकुम से मदीना वालों ने और उन मुहाजिरों ने जिनके पास अपने घर थे क़ैदियों को अपने अपने यहां रखकर उनके साथ बड़ी ही इज्ज़त का बर्ताव किया। बाद में इन क़ैदियों ने ख़ुद बयान किया 'मदीना वालों पर अल्लाह की बरकत हो! वे ख़ुद पैदल चलते थे और हमें सवारियों पर बैठाते थे। जब रोटियों की कमी थी वे हमें गेहूँ की रोटी खिलाते थे और आप खजूर खाकर रह जाते थे।' "*

बद्र की लड़ाई के बाद उमैर इब्न वाहब नामी एक नौजवान मुहम्मद साहब की जान लेने के इरादे से मदीने आया। वहां कुछ दिन उनके उपदेशों को सुनने का उस पर इतना असर हुआ कि उसने अपने आप सामने आकर अपने दिल का पाप कह डाला और इसलाम धर्म अपना लिया।

मुहम्मद साहब ने इसके बाद कोशिश की कि क़ुरैश के साथ सुलह हो जावे। उन्होंने कहला भेजा—

"ऐ मक्का वालो! तुम फ़ैसला चाहते थे तो वह हो गया, अब अगर तुम मुसलमानों पर हमला न करो तो अच्छा है, लेकिन अगर तुम फिर हमला करोगे तो हमें भी लड़ना पड़ेगा, और तुम्हारे साथ कितनी भी फ़ौज हो कुछ फ़ायदा न होगा, क्योंकि अल्लाह ईमान वालों के साथ है।

---

* Life of Mohammet, by Sir W. Muir, Vol. III, P. 122.

"......अगर वे अब हमला न करें तो अब तक जो कुछ हो चुका सब माफ़ कर दिया जायगा!" (८-१९, ३८.)

लेकिन इसका कोई नतीजा न हुआ। क़ुरैश की तरफ़ से धावे जारी रहे।

बद्र की लड़ाई के बाद ही अबु सुफ़ियान २०० तेज़ घुड़सवार लेकर मक्के से निकला और मदीने से तीन मील उधर, दो मुसलमानों को मार कर, वहां की खेती को बरबाद कर, खजूर के दरख़्तों को आग लगा, मदीना वालों के निकलने से पहले पहले वापस लौट गया।

अगले साल तीन हज़ार आदमी लेकर अबु सुफ़ियान ने फिर मदीने पर हमला किया। इस हमले की ग़रज़ उन क़ुरैशों का बदला लेना बताया गया जो पिछले साल बद्र की लड़ाई में मारे गए थे। क़ुरैश मदीने के पास आ पहुँचे। क़रीब एक हज़ार आदमी लेकर मुहम्मद साहब मदीने से बाहर आए। ओहद की पहाड़ी पर दोनों दलों में मुठभेड़ हुई। कहा जाता है मुहम्मद साहब की फ़ौज में सिर्फ़ दो घुड़सवार थे और क़ुरैश की तरफ़ दो सौ। इस लड़ाई में अबु बक्र, उमर और अली तीनों बुरी तरह घायल हुए। ख़ुद मुहम्मद साहब के पहले एक पत्थर से चोट लगी और फिर एक तीर आकर लगा जिससे उनका ओंठ कट गया और आगे का एक दांत टूट गया। क़ुरैश का पल्ला भारी रहा। लेकिन वे इतने थक गए थे कि आगे न बढ़, आस पास लूट मार कर, वहीं से लौट गए।

ओहद की लड़ाई में जो मुसलमान क़ुरैश के हाथ पड़ गए थे उन्हें ख़ूब तकलीफ़ें दी गईं, जिनका बयान करना बेकार है। मुसलमानों में बदले की आग भड़की। उस मौक़े पर क़ुरान में आयत उतरी—

"अगर तुम बदला लो तो जितना नुक़सान तुम्हें पहुंचाया गया है उतना ही बदला लो, लेकिन अगर तुम सब्र के साथ सहलो तो सचमुच सह लेने वालों के लिये सबसे अच्छा है, इसलिये तुम सब्र के साथ सहलो।"*

लड़ाई के बाद दुशमन के मुरदों और घायलों के नाक कान काट लेने का जंगली रिवाज उन दिनों यहूदियों, ईसाइयों और सब लोगों में था। क़ुरैश ने भी ओहद की लड़ाई के बाद ऐसा ही किया था। मुहम्मद साहब ने अपने आदमियों को ऐसा करने से मना कर दिया और धीरे धीरे मुहम्मद साहब ही के हुकुम से यह रिवाज अरब से हमेशा के लिये उठ गया।

क़ुरैश की दुशमनी अब और ज्यादह पक्की हो गई। उन्होंने मदीने से बाहर के अरब के दूसरे बड़े बड़े क़बीलों को अब मुहम्मद साहब के ख़िलाफ़ भड़काना शुरू किया। कई लड़ाइयां हुईं। इन सब छोटी मोटी लड़ाइयों को बयान करना बेकार है। जितनी फ़ौजें मदीने से बाहर भेजी जाती थीं उन सबके सरदारों को मुहम्मद साहब की तरफ़ से ये कड़ी हिदायतें दी जाती थीं—

---

* क़ुरान १६, १२६-१२८।

"किसी हाल में भी धोखे या दग़ाबाज़ी से काम न लेना, और न कभी किसी बच्चे की जान लेना।

"हमें जो जो नुक़सान पहुंचाए जावें उनका बदला लेने में कभी भी अपने अपने घरों के अन्दर रहने वाले बेगुनाह लोगों को दुख न देना। कभी औरतों पर हमला न करना। दुधमुहे बच्चों और बिस्तर पर पड़े बीमारों को कभी हाथ न लगाना। बस्ती के जो लोग तुमसे नहीं लड़ते उनके घरों को कभी न गिराना। लोगों के रोटी कमाने के औज़ारों और फलदार दरख़्तों को बरबाद न करना। खजूर के पेड़ों को कभी हाथ न लगाना, क्यों कि उनका साया लोगों के लिये मुफ़ीद है और उनकी हरियाली लोगों के दिलों को ख़ुश करती है।"

क़ुरैश के साथ इसके बाद एक बड़ी लड़ाई मार्च सन् ६२६ ईसवी में हुइ जो 'खन्दक़ की लड़ाई' के नाम से मशहूर है। वह लड़ाई इस तरह हुई—

क़ुरैश सरदार अबु सुफ़ियान ने, बनी ग़तफ़ान और दूसरे क़बीलों को अपनी तरफ़ मिलाकर, जिनमें कई यहूदी क़बीले भी थे, दस हज़ार हथियार बन्द लोगों को लेकर मदीने पर चढ़ाई की। ख़बर पाते ही मुहम्मद साहब ने शहर के बचाव की सोची। उनके एक ईरानी साथी सलमान ने राय दी कि शहर की चहार दीवारी के बाहर एक गहरी खाई खोद दी जावे, जिससे दुशमन आसानी से इस पार न आसके। मुहम्मद साहब के हुकुम से खाई खुदने लगी। दूसरे लोगों के साथ साथ

मुहम्मद साहब भी फावड़ा और टोकरी लेकर मिट्टी ढोने लगे। और इस तरह के गीत गा गाकर लोगों की हिम्मत बढ़ाने लगे—

"ऐ रब्ब! तेरे बिना हमें कौन सच्चा रास्ता दिखाता!

"न हम ख़ैरात करते होते, और न तेरी बन्दगी करते!

"तू ही हमें शान्ति दे और लड़ाई में हमारे क़दमों को मज़बूत कर!

"क्यों कि वे लोग हमारे ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए हैं, उन्हों ने हमें सच्चे रास्ते से हटाना चाहा, लेकिन हमने साफ़ इनकार कर दिया।"

आख़री टुकड़े को मुहम्मद साहब ज्यादह ज़ोर से गाते थे।

खाई अभी पूरी भी न हुई थी कि दुशमन आ टूटा। दस हज़ार फ़ौज खाई के उस पार और तीन हज़ार इस पार। बीस दिन तक दोनों तरफ़ से पत्थरों और तीरों की बौछार होती रही। बीस दिन बाद किसी एक जगह जहां खाई कम चौड़ी रह गई थी दुशमन की कुछ फ़ौज इस पार आ गई। ख़ूब घमसान हुआ। काफ़ी नुक़सान उठाकर दुशमन को फिर खाई के पार चला जाना पड़ा। सरदी, मेंह और रसद की कमी से भी क़ुरैश को काफ़ी नुक़सान हुआ। आख़िर पस्त और लाचार होकर बचे हुए क़ुरैश मक्के की तरफ़ और दूसरे क़बीले वाले अपने अपने घरों को लौट गए। क़ुरैश का मदीने पर यह आख़री हमला था।

इसलाम के कुछ उपदेश देने वाले



क़ुरैश के ख़िलाफ़ इस जीत से मदीने की नई क़ौमी सरकार और मुहम्मद साहब दोनों का असर बढ़ता चला गया। इसलाम के फैलने में भी इस से बहुत मदद मिली। मदीने में मुहम्मद साहब ख़ुद उपदेश देते थे, और मदीने से बाहर के लिए उन दिनों एक आम रिवाज यह था कि दूर दूर के क़बीलों के बड़े बड़े आदमी या मुखिया मुहम्मद साहब से मिलने मदीने आते थे। इन में से कई मुसलमान होकर लौटते थे। फिर इन्हीं को या कभी कभी इनके साथ कुछ और को भी उन क़बीलों में उपदेश के लिए भेज दिया जाता था।

इन अलग अलग क़बीलों के जो लोग मुहम्मद साहब से मिलने आते थे उनके साथ मुहम्मद साहब का सलूक इतना अच्छा और प्रेम का होता था, उनकी शिकायतों की तरफ़ वह इतनी अच्छी तरह ध्यान देते थे और उनके आपसी झगड़ों को इतनी ख़ूबसूरती से तय कर देते थे कि उससे मुहम्मद

साहब का नाम होता था और इसलाम से लोगों का प्रेम बढ़ता था।*

अलग अलग क़बीलों में इसलाम कैसे फैला और कहीं कहीं कैसी दिक़्क़तें हुईं इसकी कुछ मिसालें नीचे दी जाती हैं—

(१) सन् ४ हिजरी (६२५ ई०) में नज्द इलाक़े के बनु आमिर क़बीले के सरदार के कहने पर चालीस मुसलमान मदीने से बनु आमिर क़बीले में इसलाम फैलाने के लिए भेजे गए। इन चालीस में से ३८ वहां दग़ा देकर मार डाले गए। दो ज़िन्दा वापिस मदीने पहुंचे।

(२) सन् ५ हिजरी में ज़िमाम नामी एक बद्दू सरदार अचानक मुहम्मद साहब के पास पहुँचा। उसने उनसे इसलाम के बारे में बहुत से सवाल पूछे। आख़ीर में वह मुसलमान होकर लौटा और उसने अपने क़बीले वालों में इसलाम को फैलाया।

(३) मदीना और लाल समुद्र के बीच में बनु जुहैनाह नाम का एक क़बीला रहता था। उसका एक ख़ास मन्दिर था। मन्दिर में पत्थर की मूर्तियां थीं। अम्र वहां का पुजारी था। उसे मुहम्मद साहब से आकर मिलने की सूझी। मुहम्मद साहब मक्के में थे। अम्र पढ़ा लिखा और शायर था। वह मक्के आया। मुहम्मद साहब से बातचीत के बाद उसने नए धर्म को अपना लिया। अपने क़बीले में जाकर मुहम्मद साहब के हुकुम से उसने नए धर्म का उपदेश देना शुरू कर दिया। उसका असर इतना

*Muir, (2) Vol. iv, PP. 107-8.

अच्छा पड़ा कि थोड़े ही दिनों में वहां सिर्फ़ एक आदमी रह गया जिसने उसकी बात न मानी और जो अपने पुराने विचारों पर अड़ा रहा। बाक़ी सब लोग मुसलमान हो गये (इब्न साद, ११८)।

(४) सन् ६ हिजरी में मुहम्मद साहब की मक्के वालों से सुलह हो गई। इस सुलह का ज़िक्र आगे चलकर किया जावेगा। यहां पर यह बता देना ज़रूरी है कि उस सुलह से इसलाम के फैलने में और भी मदद मिली। मक्के के बहुत से लोग जो कुछ साल पहले अपने शहर में मुहम्मद साहब के उपदेश सुन चुके थे, और जो क़ुरैश के डर से रुके हुए थे, उस सुलह के बाद मदीने पहुँच कर नया धर्म अपनाने लगे।

ख़ास कर मक्के से दक्खिन के इलाक़ों में इसलाम के फैलने के लिये तभी से रास्ता खुल गया।

(५) यमन के उत्तर की पहाड़ियों में बनु दौस क़बीला रहता था। इस क़बीले के कुछ लोग मुहम्मद साहब के पहले से ही किसी नये और ज़्यादह ऊंचे धर्म की खोज में थे। मुहम्मद साहब के उपदेशों की ख़बर सुनकर दौस क़बीले का सरदार तुफ़ैल मुहम्मद साहब से मिलने मक्के आया। वह शायर भी था। उसने अपनी कुछ शायरी मुहम्मद साहब को सुनाई। मुहम्मद साहब ने उसे क़ुरान के कुछ सूरे सुनाए। तुफ़ैल को नया धर्म पसन्द आया। वह मुसलमान हो गया। मुहम्मद साहब की इजाज़त से उसने अपने क़बीले के लोगों में जाकर इसलाम को फैलाना शुरू किया। लेकिन सिवाय उसके बाप,

उसकी बीवी, और कुछ दोस्तों के किसी ने उसकी न मानी। तुफ़ैल मुहम्मद साहब के पास आया। मुहम्मद साहब ने उसे सब्र, धीरज और प्रेम से काम लेने और अपना काम जारी रखने की सलाह दी। वह फिर लौटा। इस बार एक और साथी ने उसे मदद दी। ये लोग घर घर जाते थे और नए धर्म के असूल समझाते थे। इस तरह धीरे धीरे उस क़बीले के थोड़े थोड़े लोग इसलाम धर्म अपनाते जा रहे थे। तुफ़ैल और उसके साथियों ने अपना काम जारी रक्खा। आख़िर सन् ८ हिजरी तक यानी क़रीब क़रीब दस बरस के अन्दर उस क़बीले के सारे लोगों ने नये धर्म को अपना लिया। ये लोग मुसलमान होने से पहले लकड़ी के एक लट्ठे को अपने क़बीले का देवता मानकर उसी की पूजा किया करते थे। अब वे सब एक निराकार ईश्वर की पूजा करने लगे, जो सारी दुनिया का मालिक है। जब क़बीले भर में कोई आदमी भी उस लकड़ी के देवता का पूजने वाला न रहा तो क़बीले के सरदार तुफ़ैल ने उसे सबके सामने लाकर उसमें आग लगा दी।

इसी अरसे के अन्दर इसी तरह १५ और क़बीलों ने इसलाम को अपनाया।

(६) तायफ़ शहर का एक सरदार उरवाह मुहम्मद साहब से मिलने मदीने आया। उसने इसलाम धर्म अपना लिया। वह बहुत जोशीला था। उसने मुहम्मद साहब से इजाज़त चाही कि मैं अपने शहर जाकर इसलाम को फैलाऊं। मुहम्मद

साहब ने पहले मना किया। फिर उसके ज़िद करने पर इजाज़त दे दी। वह तायफ़ गया। तायफ़ पुराने विचारों का खास गढ़ था। उसने खुले तौर मूर्ति पूजा की बुराइयां कीं। एक दिन जब वह खड़ा उपदेश दे रहा था एक तीर उसे आकर लगा। उरवाह ने ईश्वर को सराहा और वह वहीं शहीद हो गया।

(७) मुहम्मद साहब नें यमन के तीन बड़े बड़े क़बीलों के सरदारों के नाम एक खत लिखा। इस खत में उन्होंने बड़े अच्छे और प्रेम के शब्दों में उन्हें इसलाम अपनाने को कहा। यह खत मुहम्मद साहब ने अयाश नामी एक आदमी के हाथ भेजा। अयाश जब मदीने से चलने लगा तो मुहम्मद साहब ने उसे यों समझाया—

"जब तुम उनके शहर तक पहुँच जाओ तो रात को शहर के अन्दर मत जाना। सुबह तक बाहर ही ठहरना। फिर सुबह को अच्छी तरह नहाना, और 'दो रकअत' नमाज़ पढ़ना, और अल्लाह से दुआ मांगना कि तुम्हारी मुराद पूरी हो, लोग तुम्हें मुहब्बत से मिलें, और तुम हर तरह की आफ़त से बचे रहो। फिर मेरा ख़त अपने दाहिने हाथ में लेना। अपने दाहिने हाथ से उसे उनके दाहिने हाथों में देना। वे उसे ले लेंगे। फिर उन्हें क़ुरान का ९८ वां सूरा पढ़कर सुनाना। जब सुना चुको तो कहना—'मुहम्मद ने इस पर विश्वास किया है और अपने क़बीले के लोगों में से सबसे पहिले मैंने विश्वास किया है।' इसके बाद तुम उनके हर सवाल का जवाब दे सकोगे, और जो भी वह तुम्हारे ख़िलाफ़ कहेंगे उनकी बात फीकी पड़ जायगी, जो वे किसी

विदेशी बोली में बात करें या विदेशी बोली में कोई हवाला दें, तो कहना इसका तरजुमा कर दो। और उनसे कहना—'मेरे लिये एक अल्लाह बस है। मैं अल्लाह की किताब में विश्वास करता हूं। मुझे इन्साफ़ करने का हुकुम दिया गया है। अल्लाह हमारा और तुम्हारा सब का मालिक है। हमें अपने कामों का फल मिलेगा और तुम्हें तुम्हारे कामों का फल मिलेगा। हममें और तुममें कोई झगड़ा नहीं है। अल्लाह हम सबको मिला देगा। हम सबको उसी के पास जाना है।' इसके बाद अगर वे सब के सब इसलाम अपना लें, तो उनसे वे तीन छड़ियें मांगना जिनके सामने वे जमा होकर दुआएं मांगते हैं। इनमें से एक छड़ी सफ़ेद और पीले धब्बों वाली झाऊ की है, दूसरी बेत की तरह गठीली है और तीसरी आबनूस की तरह काली है। इन छड़ियों को बाज़ार में लाकर सबके सामने जला देना।"

अयाश लिखता है—

"मैं गया। मैंने ऐसा ही किया। जब मैं वहां पहुँचा तो मैंने देखा कि सब लोग किसी त्योहार के लिये अच्छे अच्छे कपड़े पहने हुए थे। मैं उनसे मिलने के लिये बढ़ा। आख़िर मैं तीन दरवाज़ों पर पहुंचा, जिनके सामने तीन बड़े बड़े परदे पड़े थे; मैं बीच के दरवाज़े का परदा उठाकर अन्दर गया। मैंने देखा लोग उस मकान के सहन में जमा थे। मैंने उनसे जाकर कहा कि मैं अल्लाह के पैग़म्बर का संदेसा लाया हूं। इसके बाद मुझे जिस तरह कहा गया था मैंने वैसा ही किया। उन लोगों ने मेरी बातों को ध्यान से सुना। और आख़ीर में जैसा पैग़म्बर ने कहा था वैसा ही हुआ।" (इब्नसाद, ५६)

छड़ियों के जलाने की इजाज़त सिर्फ़ उस सूरत में दी गई थी, जबकि उस क़बीले में एक भी आदमी उनका पूजने वाला न रहे। इस मामले में ठीक यही बर्ताव मुहम्मद साहब और उनके साथियों का और सब जगह होता था।

.क़ुरान के जिस ९८वें सूरे का ऊपर ज़िक्र है उसकी ख़ास आयत यह है—

"उनको सिवाय इसके और कुछ हुकुम नहीं दिया गया कि वे सचाई के साथ एक ईश्वर की पूजा करें, उसी का हुकुम मानें, सच्चे और ईमानदार रहें, ईश्वर से दुआ मांगते रहें, और ग़रीबों को दान देते रहें, यही सच्चा और पक्का धर्म है।" (९८-५)

(८) यमन में सबसे बड़ा क़बीला हमदान नाम का था। इस क़बीले के लोगों में जब इस नए मज़हब की ख़बरें पहुँचीं, तो उन्होंने अपने आमिर नामी एक आदमी को मक्के भेजा। आमिर मक्के में मुहम्मद साहब से मिला और मुसलमान होकर अपने घर लौटा। मदीने पहुँचने के कुछ दिनों बाद मुहम्मद साहब ने ख़ालिद को उस क़बीले में इसलाम का उपदेश देने के लिये भेजा। ख़ालिद कुछ ज्यादह न कर सका। वह छै महीने बाद मदीने लौट आया। इसके बाद मुहम्मद साहब ने ख़ालिद की जगह अली को वहां भेजा। धीरे धीरे कुछ बरस के अन्दर हमदान क़बीले के सब लोग मुसलमान हो गए। (बुख़ारी)

(९) यमन ही में ईरान के भी कुछ लोग आबाद थे। सन् १० हिजरी में मुहम्मद साहब ने बरबन यख़नस नामी एक आदमी को उनमें उपदेश देने के लिए भेजा।

(१०) इसके बाद मुहम्मद साहब ने मुआज़ और अबू मूसा दो आदमियों को यमन के एक एक ज़िले में जाने और उपदेश देने के लिए भेजा, और चलते वक़्त उनसे कहा—

"अपना काम नरमी से करना। किसी से हरगिज़ सख़्ती न करना। लोगों के दिलों को ख़ुश रखना। तुम से किसी को नफ़रत न हो पावे। मिलजुल कर काम करना। लोगों को यह समझाना कि एक ख़ुदा ही सब का ईश्वर है और उसी की सबको पूजा करनी चाहिये। फिर उन्हें दान का मतलब बताना, वह यह कि तुम में जो मालदार हैं उनसे लेकर जो ग़रीब हैं उनको देना। जब वे दान दें तो उनसे चुनकर अच्छी अच्छी चीज़ें न ले लेना। जिस आदमी के ऊपर किसी तरह का भी ज़ुल्म या ज़्यादती की जाती है, उसकी आह से डरते रहना, क्योंकि उसकी आह के और परमात्मा के बीच में कोई परदा नहीं है।" (बुख़ारी)

इसलाम के इन उपदेशों से पुराने क़बीले और उनकी ताक़त टूटती चली गई, और उनकी जगह एक ज़बरदस्त और बहुत बड़ी बिरादरी, एक नई क़ौम बनती गई, जिससे सदियों के लड़ाई झगड़े ख़त्म होकर देश भर में अमन और आमान की सूरतें दिखाई देने लगीं।

जो लोग अब अपने पुराने क़बीलों के बीच के झगड़ों और बदला लेने का मुहम्मद साहब से आकर ज़िक्र करते थे, उन्हें वे हमेशा क़ुरान की ये आयतें सुनाते थे—

"बुराई का बदला भलाई से दो।" (२३-९६)

"अगर तुम चाहते हो कि अल्लाह तुम्हें माफ़ करदे तो तुम्हें चाहिए कि तुम दूसरों के क़सूरों को माफ़ कर दो और उन्हें भूल जाओ, अल्लाह माफ़ करने वाला और दयावान है।" (२४-२२)

"ज़मीन और आसमान से बढ़कर बड़ी जन्नत (स्वर्ग) उन लोगों के लिये तय्यार है जो बुराई से बचते हैं, जो ग़रीबी में और अमीरी में दोनों में ख़ूब दान देते हैं, जो अपने ग़ुस्से को क़ाबू में रखते हैं और जो लोगों के सब क़सूर माफ़ कर देते हैं। अल्लाह उन्हीं को प्यार करता है जो दूसरों पर एहसान करते हैं।" (३-१३२, १३३)

देश-दग़ा की सज़ा

मदीने में और उसके आसपास कुछ यहूदी क़बीले रहते थे। जहां तक पता चलता है, ये लोग, कई सौ बरस पहले रोम के सम्राट हद्रियन के ज़माने में, रोम के ज़ुल्मों से लाचार होकर अपने मुल्क फ़िलस्तीन से भाग कर अरब में आकर बसे थे। ये लोग मुहम्मद साहब को इतनी जल्दी अपना धर्म गुरु या सरदार मानने को तय्यार न हो सकते थे, जितनी जल्दी अरब के और क़बीले। इसकी एक साफ़ वजह यह भी थी कि अरबों में इससे पहले कभी कोई पैग़म्बर न हुआ था। लेकिन यहूदियों में हज़रत इबराहीम से लेकर हज़रत मूसा तक बहुत से पैग़म्बर हो चुके थे। इसलिए यहूदी इतनी आसानी से किसी नए आदमी को और वह भी एक अरब को पैग़म्बर मानने को तय्यार न थे, और राज काज में उन्हें अपना राजा या सरदार मानने में भी अपनी हेटी समझते थे।

मुहम्मद साहब ने मदीने आते ही इन यहूदियों के साथ सुलह से रहने की बहुत कोशिशें की, लेकिन उन पर ज़्यादह

असर न हुआ। कुछ यहूदी कभी कभी अन्दर ही अन्दर क़ुरैशों से मिलकर दग़ा की सोचते रहते थे। इनमें से कुछ ने ख़न्दक़ की लड़ाई में ऐन मौक़े पर क़ुरैश के साथ मिल जाने की कोशिश की थी, और कुछ ने उन्हें अन्दर ही अन्दर मदद भी दी थी।

मशहूर इतिहासकार (मवर्रिख़) स्टेनले लेनपूल लिखता है—

"......यहूदियों ने इसलाम को बुरा कहना, उसकी हंसी उड़ाना, और जिस तरह उन्हें सूझ सका उस तरह इसलाम के पैग़म्बर को दिक़ करना शुरू किया।...इसमें शक नहीं जब तक दया की जा सकती थी, तब तक मुहम्मद साहब ने उनके साथ दया का सलूक किया। उन्हों ने उनके साथ एक समझौता कर लिया था, जिसमें मुसलमानों और यहूदियों सब के अलग अलग हक़ तय कर दिये गए थे। उन्हें अपने धर्म के पालन की पूरी आज़ादी थी। समझौते में जितने लोग शामिल थे उन सब को हिफ़ाज़त का वचन दे दिया गया था और उनका डर दूर कर दिया गया था। किसी पर भी बाहर से कोई हमला करे तो उसकी मदद करना सब का धर्म ठहराया गया था,......

"इतने से भी यहूदियों की तसल्ली न हुई। उन्हों ने बिना वजह छेड़ छाड़ शुरू कर दी।......

"इन लोगों ने मदीने के राज्य के ख़िलाफ़ छिप छिप कर गुट बन्दियां कीं। मुहम्मद साहब सिर्फ़ इसलाम धर्म के चलाने वाले ही न थे, वह मदीने के बादशाह भी थे, और शहर के अमन और आमान

के लिये ज़िम्मेवार थे। पैग़म्बर की हैसियत से वह यहूदियों के इन हमलों को टाल सकते थे......पर शहर के हाकिम की हैसियत से, ऐसे दिनों में जब कि लगातार लड़ाइयां होती रहती थीं, मुहम्मद साहब दग़ा की तरफ़ से बेपरवाह न हो सकते थे। एक ऐसे दल को दबाना जिसकी मदद से दुश्मन की फ़ौजें कभी भी नगर को लूट सकती थीं, और एक बार क़रीब क़रीब लूट ही लिया था, अपनी सारी प्रजा की तरफ़ मुहम्मद साहब का धर्म था।

"क़रीब आधे दरजन यहूदियों को जो अपनी ज़्यादतियों के लिये, और मदीने के दुशमनों तक ख़बरें पहुँचाने के लिये मशहूर थे, मौत की सज़ा दी गई। तीन यहूदी क़बीलों में से दो को, जो इससे पहले देश निकाले की सज़ा पाकर ही बाहर से वहां आए थे, फिर यही सज़ा दी गयी,......

"जो सज़ा तीन क़बीलों को दी गई उसमे देश निकाले की सज़ा जो दो क़बीलों को दी गई काफ़ी नरम थी। ये लोग बग़ावत करते रहते थे। मदीने के लोगों को एक दूसरे से लड़ाते रहते थे। आख़ीर में एक बार कुछ झगड़ा हुआ। शहर में बलवा हो गया। नतीजा यह हुआ कि इनमें से एक क़बीले को देश से निकाल दिया गया। इसी तरह सरकारी हुकुमों को न मानने, दुशमनों से मिल जाने और ख़ुद पैग़म्बर की हत्या के लिये गुटबन्दी करने के इलज़ाम में दूसरे क़बीले को देश निकाले की सज़ा दी गई। इन दोनों क़बीलों ने पिछले समझौते की शर्तों को तोड़ा था, और मुहम्मद साहब और उनके धर्म दोनों की हंसी उड़ाने और उन्हें मिटाने की हर तरह कोशिश की

थी। सवाल सिर्फ़ यह है कि जो सज़ा उन्हे दी गई उसमें ज़रूरत से ज़्यादह नरमी थी या नहीं।"*

जिन दो क़बीलों को देशनिकाला दिया गया, उन्हें सिर्फ़ यह हुकुम था कि सिवाय हथियारों के अपना बाक़ी सब माल असबाब अपने साथ ले जाओ, और मदीना राज से बाहर जहां चाहे चले जाओ।†

इन यहूदियों की उन दिनों यह हालत थी कि एक बार कुछ यहूदियों ने मुहम्मद साहब से आकर कहा कि हमारा क़बीला इसलाम धर्म अपनाना चाहता है, समझाने के लिये कुछ आदमी हमारे साथ भेज दीजिये। छै आदमी उनके कहने पर उनके साथ भेज दिये गए। रास्ते में जब ये छै मुसलमान एक नाले के किनारे आराम कर रहे थे, साथवाले यहूदी अचानक उन पर टूट पड़े, उनमें से चार को उन्हों ने वहीं मार डाला और बाक़ी दो को मक्के ले जाकर क़ुरैश के हवाले कर दिया, जहां वे और भी बेदरदी के साथ मार डाले गए।

एक दूसरी बार कुछ यहूदियों ने आकर अपने को मुसलमान बताया और कहा कि किसी दुशमन ने हम पर हमला किया है, हमारी मदद के लिये आदमी दीजिये। ७० आदमी तुरत

---

* Stanley Lane Pool in his Introduction to E. W. Lane's Selections from the Quran.

† Life of Muhammad, by Mirza Abul Fazal.

उनके साथ भेज दिये गए। रास्ते में एक नदी के किनारे इनमें से ६६ को उसी तरह दग़ा दे कर मार डाला गया।

एक बार एक यहूदी क़बीले ने मुहम्मद साहब की दावत की। दीवार से पीठ लगाए मुहम्मद साहब बेखटके खाना खा रहे थे और चाल यह थी कि ऊपर से एक भारी चक्की का पाट अचानक उनके ऊपर इस तरह लुढ़का दिया जावे कि वह वहीं ख़त्म हो जावें। पर ठीक वक़्त पर इस चालबाज़ी का पता लग गया। मुहम्मद साहब बच गए।

वही इतिहासकार उसके बाद लिखता है—

"तीसरे क़बीले की आगे के लिये एक डराने वाली मिसाल क़ायम की गई। फ़ैसला मुहम्मद साहब का दिया हुआ नहीं था, बल्कि एक पंच का दिया हुआ था, जिसे यहूदियों ने ख़ुद अपनी तरफ़ से पंच बनाया था। जब क़ुरैश और उनके साथियों ने मदीने को घेर रखा था और शहर की दीवारों को क़रीब क़रीब तोड़ डाला था, उस वक़्त इस यहूदी क़बीले वालों ने दुशमन से मिलकर गुटबन्दी शुरू की। पैग़म्बर की होशियारी से बात खुल गई और चल न सकी। जब दुशमन हार कर लौट गया तो जैसा चाहिये, मुहम्मद साहब ने यहूदियों से जवाब तलब किया। उन्होंने जवाब देने से इनकार किया। उन्हें घेर लिया गया। लाचार होकर उन्होंने हार मान ली। उनकी प्रार्थना पर मुहम्मद साहब ने इस बात को मान लिया कि एक ऐसे क़बीले का सरदार, जिसका यहूदियों के साथ मेल मिलाप था, उनके लिये सज़ा तय करे। यह उस आदमी ने फ़ैसला दिया कि बाग़ी

क़बीले के कुल यहूदी मर्द जिनकी तादाद क़रीब ६०० थी क़त्ल कर दिये जावें और औरतें और बच्चे ग़ुलाम बना लिये जावें।

"फ़ैसला सख़्त और ख़ूनी था। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि इन लोगों का क़सूर राज के ख़िलाफ़ गुटबन्दी और दग़ा करना था और वह जब कि दुशमन ने नगर को घेर रखा था। जिन लोगों ने इतिहास में पढ़ रखा है कि ड्यूक आफ़ वेलिङ्गटन के कूच का सारा रास्ता इसी से पहचाना जा सकता था कि रास्ते भर दरख़्तों के ऊपर फ़ौज को छोड़कर भागने वालों और लूटने वालों की लाशें लटकी हुई दिखाई देती थीं, उन्हें एक देश से दग़ा करने वाले क़बीले के इस तरह मार डाले जाने पर अचरज नहीं होना चाहिये।" *

मिरज़ा अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि ख़ुद यहूदियों में लड़ाई के जो क़ायदे थे यह फ़ैसला उन कायदों के अन्दर था। लेकिन मुहम्मद साहब ने औरतों और बच्चों के साथ इस सख़्ती की इजाज़त न दी और—"बाद में सब औरतों और बच्चों को आज़ाद कर दिया गया। किसी एक को भी ग़ुलाम बनाकर नहीं बेचा गया।" जिन ६०० मर्दों को मौत की सज़ा सुनाई गई थी उनमें से भी मुहम्मद साहब ने ४०० को माफ़ कर दिया। सिर्फ़ "दो सौ ही को यह सज़ा दी गई।"

यही मुहम्मद साहब की ज़िन्दगी का सब से सख़्त काम गिना जाता है।

---

* Stanley Lane Pool in his Introduction to "Selections from the Quran," by E. W. Lane.

मक्के की पहली यात्रा



मक्के से आए हुए मुसलमानों को अपनी जन्मभूमि छोड़े छै साल हो चुके थे। उनमें से बहुतसों के बाल बच्चे अभी तक मक्के में थे। क़ुरान में ज़िक्र आता है कि उनके इन बालबच्चों के साथ क़ुरैश की ज्यादतियों की ख़बरें मुहम्मद साहब के कानों तक बार बार पहुँचती रहती थीं। मुहम्मद साहब की उम्र अब क़रीब ६० साल की थी। ज़ाहिर था कि जब तक मक्के और मदीने में दो ज़बरदस्त ताक़तें एक दूसरे की दुशमन बनी रहेंगी, तब तक अरब में अमन शान्ति नहीं रह सकती थी। मुहम्मद साहब शुरू से ही जितने बेचैन अरबों के विचारों को सुधारने के लिए थे, उतने ही या उससे भी ज्यादह बेचैन सारे अरब को एक क़ौम देखने के लिये थे। बिना इस के अरब का आज़ाद और सुखी रह सकना हो ही नहीं सकता था; काबे के साथ मुसलमानों को भी वैसाही प्रेम था जैसा पुराने ख़याल के अरबों को। काबे की बुनियाद डालने वाले हज़रत इबराहीम को मुसलमान पैग़म्बर मानते थे। मुहम्मद साहब दुनिया भर के

बड़े से बड़े और पुराने से पुराने तीर्थों में गिने जाने वाले काबे के इस तीर्थ के बड़प्पन को और उसकी यात्रा की क़द्र को भी ख़ूब समझते थे। हज्ज के दिनों में दूसरे अरबों की तरह मुसलमानों को भी काबे की यात्रा का हक़ था। मुहम्मद साहब ने शान्ति के साथ, बिना लड़े और बिना हथियार उठाये, आज कल के शब्दों में "अहिंसात्मक सत्याग्रह" के ज़रिये अपने इस हक़ को काम में लाने और इसी के ज़रिये मक्के वालों और मदीने वालों को एक प्रेम डोर में बांधने का फ़ैसला किया।

मुहम्मद साहब ने मक्के की यात्रा का इरादा किया। ठीक हज्ज के महीने में जब कि अरबों की तमाम आपस की लड़ाइयां बन्द हो जाती थीं, १४०० आदमियों के साथ मुहम्मद साहब मक्के की हज्ज के लिये चले। चलने से पहले यह "हुकुम देदिया कि कोई शख्स हथियार बांध कर न आए।" (शिबली) लड़ाई के ख़ास हथियार तीर कमान या भाला एक भी किसी के पास न था। इस पर भी मक्के वालों की पूरी तसल्ली के लिए सबने हज्ज के वह कपड़े (एहराम) पहने जिन्हें पहन कर आदमी किसी चींटी को भी नहीं मार सकता और न पत्ता तोड़ सकता है। रास्ते से आदमी भेज कर मुहम्मद साहब ने क़ुरैश से हज्ज की इजाज़त मांगी। क़ुरैश ने इनकार कर दिया, और एक हथियारबन्द फ़ौज निहत्थे मुसलमानों का रास्ता रोकने के लिये खड़ी कर दी। मुहम्मद साहब सबको लेकर आगे बढ़े। ८० क़ुरैशों के एक दल ने उन पर हमला किया

और ख़ुद मुहम्मद साहब पर तीर चलाये। मुसलमानों की तरफ़ से कोई जवाब नहीं दिया गया। मुसलमानों की तादाद ज्यादह थी। उन्हों ने इन ८० क़ुरैश को ज़िन्दा पकड़ कर मुहम्मद साहब के सामने लाकर खड़ा कर दिया। मुहम्मद साहब ने उन सब को माफ़ कर दिया और इस वादे पर छोड़ दिया कि हम दोबारा मुसलमानों के ख़िलाफ़ हथियार न उठावेंगे। इस मौक़े पर मुहम्मद साहब और उनके साथियों का सारा बर्ताव सच्चे "सत्याग्रहियों" का सा था। १४०० आदमी बिना किसी तरह के हथियार के और बिना दूसरे पर हाथ उठाये अपने हक़ के लिए डटे थे। क़ुरैश पर इसका गहरा असर पड़ा।

हुदैबियाह की सुलह



दोनों तरफ़ के ख़ास ख़ास लोग जमा हुए। सुलह की शर्तें लिखी जाने लगीं। मुहम्मद साहब बोलते जाते थे और अली लिखते जाते थे। "अल्लाह के नाम पर जो रहमान और रहीम है!" क़ुरैश ने रोक दिया और लिखाया "अल्लाह तेरे नाम पर!" मुहम्मद साहब ने मान लिया। फिर शुरू किया—"मुहम्मद, अल्लाह के रसूल की तरफ़ से" क़ुरैश ने फिर रोका और लिखाया "अब्दुल्ला के बेटे मुहम्मद की तरफ़ से।" मुहम्मद साहब ने फिर तुरत मान लिया और अपने हाथ से काट कर ठीक कर दिया। ख़ास शर्तें ये तय पाईं—

१—क़ुरैश में से कोई अगर बिना अपने बड़ों या सरदार से पूछे मुहम्मद के पास जावेगा तो उसे क़ुरैश के पास वापस लौटा दिया जायगा।

२—मुसलमानों में से जो कोई मक्का वालों के पास चला जायगा उसे वापस न किया जायगा।

३—हर क़बीले को आज़ादी होगी कि वह क़ुरैश या मुहम्मद जिससे चाहे मिल कर रहे।

४—इस बार मुसलमान विना हज्ज किये वहीं से वापिस मदीने लौट जांय।

५—अगले दस साल तक क़ुरैश और मुसलमानों में लड़ाइयां बन्द रहें।

६—अगले साल मुसलमानों को हज्ज के लिये मक्का आने और तीन दिन तक मक्के में रहने की इजाज़त होगी।

क़ुरैश और मुहम्मद साहब के बीच की यह सुलह "हुदैबियाह" की सुलह के नाम से मशहूर है। इसकी आख़री दोनों शर्तें मुहम्मद साहब की तसल्ली के लिए काफ़ी थीं।

मुहम्मद साहब ने सच्चाई के साथ इस सुलह की शर्तों पर अमल किया। एक नौजवान क़ुरैश लड़का मुहम्मद साहब के पास पहुँचा। वह अपने को मुसलमान कहता था। उसने मुहम्मद साहब के साथ रहना चाहा। लड़के के बाप ने आकर मुहम्मद साहब को सुलह की शर्तों की याद दिलाई। मोहम्मद साहब ने लड़के को बाप के साथ वापिस जाने पर मजबूर किया और उसे दु:खी देख तसल्ली देते हुए कहा—"सब्र करो और अल्लाह पर भरोसा करो, तुम्हारे और तुम्हारे जैसे दूसरों के छुटकारे का वह ज़रूर कोई न कोई रास्ता निकालेगा।"

इसी तरह की और भी कई मिसालें मिलती हैं। मक्के में ऐसे लोग बढ़ते जा रहे थे, जिनके दिल मुहम्मद साहब के साथ

यहूदियों और मुसलमानों में मेल

मुसलमानों के इस बर्ताव से इसलाम की जड़ें लोगों के दिलों में जमगईं। बहुत से बड़े बड़े क़ुरैश मुसलमान हो गए। इसलाम के माननेवालों की तादाद तेज़ी से बढ़ने लगी और आस पास के क़बीलों ने जल्दी जल्दी नए पैग़म्बर के धर्म और उसके राज दोनों को मानना शुरू कर दिया

लेकिन यहूदियों की दुशमनी अभी तक पूरी तरह ठण्डी न हुई थी। मुहम्मद साहब को मक्के से लौटकर उनके साथ आख़री मोरचा लेना पड़ा। अरब में यहूदियों का सबसे बड़ा गढ़ मदीने से कोई १०० मील उत्तर में एक शहर ख़ैबर था। कुछ बाग़ी यहूदी और कुछ और क़बीले मदीने पर हमला करने के इरादे से ख़ैबर के आस पास जमा हो गए।

मुहम्मद साहब ने १४०० आदमियों को लेकर ख़ैबर पर चढ़ाई की। उन्हों ने यहूदियों से सुलह के लिये कहा, लेकिन बेकार। यह इलाक़ा पहाड़ी था और इसमें बहुत से मज़बूत क़ि

थे। कई हफ़्ते लड़ाई होती रही, जिसमें अबुबक्र, उमर और अली तीनों ने हिस्सा लिया। आख़ीर एक एक कर सब क़िले मुसलमानों के हाथों में आगए। अब यहूदियों ने सुलह चाही। उनकी बात मान ली गई। उन्हें अपने धर्म पर चलने की पूरी आज़ादी दे दी गई। उनकी ज़मीनें और माल असबाब सब उन्हें वापिस दे दिया गया। और उन्हों ने मदीने की क़ौमी सरकार को अपनी सरकार मान लिया। यहूदी और मुसलमान अब से एक मिली हुई क़ौम एक "उम्मत" बन गए।

मुहम्मद साहब अभी ख़ैबर के क़िले में ही थे कि उनकी जान लेने की फिर एक कोशिश की गई। एक यहूदी औरत ने मुहम्मद साहब और उनके साथियों के लिये खाना परसा, जिसमें ज़हर मिला दिया गया था। उनका एक साथी दो चार कौर खाकर मर गया। मुहम्मद साहब भी पता लगने से पहले खाना चख चुके थे। उनकी जान बचगई लेकिन अन्दर जो ज़हर जा चुका था, उसके सबब बाक़ी ज़िन्दगी भर उन्हें दुःख भोगना पड़ा। मुहम्मद साहब ने उस औरत को बिलकुल माफ़ कर दिया और सुलह की शर्तों पर इसका कोई असर नहीं पड़ने दिया।

क़ुरैश के साथ कम से कम दस साल के लिये सुलह हो चुकी थी। यहूदियों की दुशमनी भी ठण्डी हो चुकी थी। मदीने की ताक़त बढ़ रही थी। इसलिये १५ साल पहले जो मुसलमान अपने धर्म को बचाने के लिये इथियोपिया भागकर चले गए थे, उनमें से बहुत से अब अपने देश लौटकर मदीने में रहने लगे।

रोम वालों से लड़ाई और जीत



अरब के बीच के हिस्से में जो उन दिनों आज़ाद था, अब कोई ख़ास दुशमन मुहम्मद साहब का न रहा था। इस सारे हिस्से के लोग धीरे धीरे एक ईश्वर और एक धर्म के मानने वाले और एक क़ौम बनते जा रहे थे। मुहम्मद साहब का ध्यान अब दक्खिन और उत्तर के उन अरब इलाकों की तरफ़ गया, जो विदेशी बादशाहों के हाथ में थे। दक्खिन में यमन और उसके पास के उपजाऊ इलाके इस बीच इथियोपिया के ईसाई बादशाह के हाथों से निकल कर ईरान के ज़रथुस्त्री सम्राट ख़ुसरो परवीज़ के हाथ में आचुके थे और शाम से मिले हुए उत्तर के कुछ सूबे रोम के ईसाई सम्राट के मातहत थे। जो सूबे रोम के हाथ में थे, वहां की अरब प्रजा को भी ईसाई बनकर ही रहना पड़ता था।

ईरान और रोम इन दोनों बड़ी ताक़तों की लगातार आपसी लड़ाइयों और दोनों की गिरती हुई हालत को मुहम्मद साहब

ख़ूब जानते थे। रोम के राज में ईसाई धर्म की गिरावट और ईरान में पुराने पारसी धर्म की उन दिनों की बुरी हालत भी उनकी आंखों से ओझल न थी। उन्हें मालूम था कि रोम के सारे राज में धर्म की आज़ादी का कहीं निशान न था, ईसाई सम्राटों और पादरियों की छोटी निगाह इस हद को पहुँच गई थी कि साइन्स, वैद्यक वग़ैरह का पढ़ना पढ़ाना वहां जुर्म था और धर्म के नाम पर आए दिन हज़ारों और लाखों मनुष्य ज़िन्दा जलाए जा रहे थे और तलवार के घाट उतारे जा रहे थे। ऐसे ही ईरान में उस ज़माने के ज़रथुस्त्री धर्म ने लाखों ऐसे पेशे वालों को जिन्हें अपने पेशे में आग काम में लानी पड़ती थी, जैसे सुनार, लोहार वग़ैरह हिन्दुस्तान के अछूतों से भी बुरी हालत को पहुँचा रखा था। मुहम्मद साहब ने सोचा कि अगर इन दोनों जगह के सम्राट इसलाम धर्म अपनालें, यानी और सब चीज़ों को छोड़कर सिर्फ़ एक अल्लाह की पूजा करने लगें, और सब आदमियों को एक बराबर समझने लगें, तो इन दोनों देशों का सुधार भी आसान हो जाय और उनकी अरब प्रजा को भी इसलाम अपनाने का सुभीता हो जाय।

उन्हों ने बेधड़क आस पास के बादशाहों को इसलाम धर्म मान लेने को लिखा और ख़ास आदमियों के हाथ ६२८ ई० में इनके पास ख़त भेजे, जिनमें उन्हें अपने बहुत से देवी देवताओं और बुतों की पूजा और निकम्मी बहसों को छोड़कर एक निराकार अल्लाह की पूजा करने का उपदेश दिया। इनमें दे

ख़त ख़ास थे, एक कुस्तुनतुनिया में रोम के सम्राट हिरेक्लियस के नाम और दूसरा ईरान के सम्राट ख़ुसरू परवीज़ के नाम। तीन और ख़त, एक यमन के हाकिम के नाम, एक मिस्र के हाकिम के नाम और एक इथियोपिया के बादशाह के नाम थे। हिरेक्लियस ने ख़त पाकर मुहम्मद साहब के चलन वग़ैरह के बारे में और ज़्यादह जानना चाहा; लेकिन परवीज़ ने बड़े घमण्ड के साथ ख़त फाड़कर फेंक दिया।

मुहम्मद साहब ने अब इन सब सरहदी अरब इलाक़ों में इसलाम धर्म समझाने वाले भेजने शुरू किये। इनमें कुछ उत्तर की तरफ़ शाम की सरहद पर के अरब क़बीलों के पास गए। रोम के सम्राट अपने राज में मज़हब की आज़ादी का नाम सुनना भी न सह सकते थे।

मुहम्मद साहब के भेजे हुए आदमियों और रोम के हाकिमों में टक्कर होनी ही थी।

रोम के मातहत अम्मान का हाकिम फ़रवाह एक ईसाई अरब था। उसे मुहम्मद साहब का नया धर्म पसन्द आ गया। उसने इसलाम अपना लिया और मुहम्मद साहब को कहला भेजा। वहां के रोमी गवरनर को जब पता चला तो उसने फ़रवाह को फिर से ईसाई हो जाने के लिये लिखा और साथ ही तनख़ाह और ओहदे में तरक्क़ी का लोभ दिया। फ़रवाह ने इनकार कर दिया। फ़रवाह को मौत की सज़ा दे दी गई।

इस पर मुहम्मद साहब ने रोम की हकूमत के साथ एक तरह का सत्याग्रह शुरू कर दिया। वह अपने देशवासी अरबों में इसलाम फैलाने की आज़ादी चाहते थे। शाम की सरहद पर अरब क़बीलों में इसलाम फैलाने के लिये मुहम्मद साहब ने दस दस, बीस बीस मुसलमानों के जत्थे भेजने शुरू किये। इन जत्थों में से इक्का दुक्का आदमी बचकर मदीने तक वापिस आता था। बाक़ी सब मार डाले जाते थे। इतने बड़े राज के अन्दर इन छोटे छोटे जत्थों का कोई फ़ौजी या राजकाजी मतलब न हो सकता था। मुहम्मद साहब की ग़रज़ सिर्फ़ अरबों में इसलाम फैलाना था। पर रोम के हाकिम अपनी प्रजा को इस तरह की आज़ादी देना न चाहते थे।

मुहम्मद साहब ने सब शिकायतें लिखकर एक ख़त बोसरा (फ़िलिस्तीन) के ईसाई गवरनर के नाम एक ख़ास आदमी के हाथ भेजा। रास्ते ही में मौतह के ईसाई हाकिम शुरहबील ने उस आदमी को मारडाला।

यह बात याद रखनी चाहिये कि जिन इलाक़ों में मुहम्मद साहब के उपदेश देने वाले जाते थे और मारडाले जाते थे वह सब अरब ही के हिस्से थे, और अरबों ही की वहां आबादी थी। मुहम्मद साहब के पास अब सिवाय लड़ने के और कोई चारा न था और लड़ाई भी इतने बड़े राज के साथ। तीन हज़ार हथियारबन्द सिपाही मुहम्मद साहब के पुराने साथी ज़ैद के मातहत मौतह की तरफ़ भेजे गए। इस फ़ौज में ज़ैद के अलावा

और कई मशहूर मुसलिम सरदार थे। इनमें एक अबुतालिब का बेटा अली का भाई जाफ़र था, जिसने इथियोपिया के ईसाई बादशाह के सामने मुसलमानों की वकालत की थी, दूसरा मशहूर मुसलमान बहादुर और शायर अब्दुल्लाह था, तीसरा वलीद का बेटा खालिद था, जो कभी मुहम्मद साहब का कट्टर दुशमन रह चुका था और जो बाद में इसलाम के सबसे बड़े फ़ौजी सरदारों में से हुआ। इन अरब सरदारों के रहते एक आज़ाद हुए हब्शी ग़ुलाम ज़ैद को सारी फ़ौज का और सब सरदारों का सरदार बनाना मुहम्मद साहब की तरफ़ से अरबों के अपनी नसल और खानदान के घमण्ड पर एक खासा वार था।

चलते वक्त मुहम्मद साहब ने ज़ैद को हिदायत दी—

"लोगों के साथ नरमी का बर्ताव करना, औरतों, बच्चों, ईसाई साधुओं और कमज़ोरों पर किसी हालत में भी हमला न करना, न किसी का घर गिराना और न कोई फलदार दरख्त काटना।"

रास्ते में इन लोगों को पता चला कि एक बहुत बड़ी रोम की फ़ौज सम्राट हिरेक्लियस के भाई थियोडोरस के मातहत मुसलमानों को कुचलने के लिये आ रही है। सलाह होने लगी। कुछ की राय हुई कि मुहम्मद साहब के पास आदमी भेजकर फिर से उनकी राय ले ली जाय। अब्दुल्लाह ने ललकार कर कहा "हम तादाद के भरोसे आगे नहीं बढ़े, हम सिर्फ़ अल्लाह

की राह पर और उसी की मदद की उम्मीद में घर से निकले हैं। जीतेंगे तो नाम है। मरेंगे तो जन्नत।"*

अपने नए धर्म की सचाई के अन्दर इस अटल विश्वास ने ही सातवीं सदी के अरबों में वह ताक़त पैदा कर दी थी, जिससे वे बड़ी से बड़ी सीखी हुई फ़ौजों और बड़ी बड़ी हकूमतों के सामने भी मैदान पर मैदान जीतते चले गए।

मौतह नगर के पास दोनों फ़ौजों में मुठभेड़ हुई। इसलाम का झण्डा ज़ैद के हाथों में था। ज़ैद के गहरा ज़ख्म लगा। झण्डा उसके हाथों से गिरने ही को था कि जाफ़र ने आगे बढ़कर झण्डे को ऊंचा किया। लड़ाई का सारा ज़ोर इसी झण्डे के आसपास था। जिस हाथ में जाफ़र ने झण्डा थामा वह हाथ कट कर गिर गया। जाफ़र ने दूसरे हाथ से झण्डा सम्हाला वह भी कट कर गिर गया। जाफ़र ने अपने दोनों लहू लहान बाज़ुओं से झण्डा दाबे रखा। एक और वार में जाफ़र की खोपड़ी के टुकड़े उड़ गए। जाफ़र गिर गया। अब्दुल्लाह ने बढ़ कर झण्डा अपने हाथ में लिया। अब्दुल्लाह भी कट कर गिर गया। ख़ालिद ने अब्दुल्लाह की जगह ली और चीरता हुआ कुछ दूर तक रोम की फ़ौज के अन्दर घुस गया। इतने में शाम हो गई। दोनों फ़ौजों को एक दूसरे की बहादुरी का काफ़ी

---

* 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम'—भगवद्गीता ।

अन्दाज़ा हो चुका था। दोनों ने तय किया कि रात को अपनी अपनी जगह आराम करें और सुबह को लड़ाई फिर शुरू हो। लिखा है उस दिन की लड़ाई में ख़ालिद के हाथों में नौ तलवारें टूटीं।

दूसरे दिन ख़ालिद ने, जो अब ज़ैद की जगह सारी फ़ौज का सरदार था, इस होशियारी के साथ फ़ौज को खड़ा किया और मुसलमान जत्थों को अलग अलग तरफ़ से आगे बढ़ाया कि थोड़ी ही देर बाद रोम की फ़ौज पीछे हटने लगी। उनमें भगदड़ मच गई। कुछ दूर तक ख़ालिद ने उनका पीछा किया। लेकिन दो दिन की लड़ाई में काफ़ी मुसलमान मर चुके थे और काफ़ी घायल हो चुके थे। थोड़ी देर तक भागते हुए दुशमन का पीछा करने के बाद रोम की फ़ौज का बहुत सा क़ीमती माल और उनके छूटे हुए हथियार साथ लेकर ख़ालिद मदीने की तरफ़ लौटा। यह ख़ालिद दुनिया के बड़े से बड़े जरनैलों या फ़ौजी सरदारों में गिना जाता है।

इस जीत पर मदीने में ख़ुशी और रंज दोनों मिले हुए थे। मुहम्मद साहब ने ख़ालिद को गले लगाया, लेकिन अपने प्यारे जाफ़र के यतीम बेटे और वफ़ादार ज़ैद की छोटी लड़की को देखकर मुहम्मद साहब उन्हें चिपट कर इस तरह फूट फूट कर रोए कि पास के एक आदमी ने हैरान होकर पूछ ही लिया "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आप भी इस तरह रोते हैं?"

इस लड़ाई से मुहम्मद साहब दुनिया में मशहूर होगए। उत्तर अरब के लोग अब बड़ी बड़ी तादाद में इसलाम अपनाने लगे, और उत्तर के सूबे एक एक कर रोम के राज से टूटकर मदीने की आज़ाद क़ौमी सरकार को अपनी सरकार मानने लगे।

मक्के की जीत

मुहम्मद साहब का ध्यान अब फिर मक्के की तरफ़ गया। क़ुरैश के साथ सुलह हो चुकी थी। लेकिन कुछ क़ुरैशों ने फिर इस सुलह के खिलाफ़ ख़ुजाआह क़बीले पर, जो मदीने की सरकार की रिआया थे, हमला कर दिया। मुहम्मद साहब ने इस बार १०,००० हथियारबन्द लेकर मक्के पर चढ़ाई की। इस फ़ौज की सरदारी उमर को सौंपी गई।

शाम को यह फ़ौज मक्के के बाहर जाकर ठहरी। सिपाहियों को हुकुम था कि जहां तक हो सके किसी पर हथियार न चलावें, और अगर कोई दुशमन मिले, तो उसे पकड़ लावें। थोड़ी देर बाद पहरे के कुछ सिपाही शहर के बाहर से दो आदमियों को पकड़कर मुहम्मद साहब के सामने लाए। उनमें एक मशहूर क़ुरैश सरदार अबु सुफ़ियान था। अपने ज़िन्दगी भर के दुशमन को, जिसके सबब मुसलमानों को बीस साल तक इतनी मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं, अपने सामने देखकर मुहम्मद साहब को

आंखों से टप टप आंसू गिरने लगे। उन्हों ने बिना किसी शर्त के अबु सुफ़ियान के सब पुराने क़सूर माफ़ कर दिये और उसे इज़्ज़त से बैठाया। अबु सुफ़ियान के दिल पर इसका गहरा असर हुआ। वह अहसान से दब गया। अबु सुफ़ियान की मार्फ़त मक्का वालों को संदेसा भेजा गया। कहा जाता है कि सिर्फ़ मुट्ठीभर लोगों को छोड़ कर अबु सुफ़ियान ने और सबने मुहम्मद साहब को अपना सरदार, और मदीने की सरकार को अपनी क़ौमी सरकार मान लिया। इस तरह बिना एक भी आदमी का ख़ून बहे मक्का जीत लिया गया।

अगले दिन बहुत सवेरे मुहम्मद साहब अपने साथियों को लेकर शहर की तरफ़ बढ़े। एक दल ख़ालिद के साथ था। लोगों को हिदायत थी कि सब के साथ नरमी और बरदाश्त से काम लें और अपनी तरफ़ से किसी पर हमला न करें। कहते हैं कुछ क़ुरैश ने ख़ालिद के दस्ते पर दो चार तीर चला दिये, जिसका ख़ालिद ने भी तलवार से जवाब दिया। मुहम्मद साहब ने उसी दम ख़ुद आगे बढ़कर ख़ालिद को रोक दिया। शहर के बाहर मुहम्मद साहब ने अपने मामूली कपड़े उतार कर और हथियार अलग रखकर 'एहराम' बांधा यानी काबे के यात्री के कपड़े पहने और बिना हथियार अकेले ऊंट पर बैठ कर ठीक सूरज निकलते निकलते शहर के अन्दर पहुँच गए।

"जिन लोगों ने शुरू से अब तक मुहम्मद साहब को इतनी तकलीफ़ें पहुंचाई थीं, वे अब उनके क़दमों पर थे...ऐसे ही वक्त पर

आदमी अपने असली रंग में दिखाई देता है। ......सच्ची बात बहुत ठोस होती है, और यह एक सच्ची बात है कि अपने ज़िन्दगी भर के दुशमनों के ऊपर मुहम्मद साहब की सबसे बड़ी जीत का दिन ही अपनी आत्मा के ऊपर भी उनकी सबसे बड़ी जीत का दिन था। क़ुरैश ने बरसों जो उन्हें दुःख पहुंचाए थे, बेइज़्ज़ती की थी और ज़ुल्म किये थे, मुहम्मद साहब ने सबको खुले दिल से माफ़ कर दिया। उन्हों ने मक्के के तमाम लोगों का डर दूर कर दिया। जिस वक़्त उन्हों ने अपने सब से कट्टर दुशमनों के शहर में जीत का दिल लिए हुए पांव रखा, सिर्फ़ चार नाम उनके पास ऐसे थे जिन्हे इन्साफ़ से सज़ा देना ज़रूरी था। पैग़म्बर के बाद उनकी फ़ौज ने भी उन्हीं की मिसाल पर अमल करते हुए ठण्डे दिल से और चुप चाप शहर में क़दम बढ़ाया। न एक मकान लूटा गया और न एक औरत की बेइज़्ज़ती की गई।"*

उस ज़माने के फ़ौजी इतिहास में यह सचमुच एक अनहोनी बात थी। जिन चार आदमियों को सज़ा देना ज़रूरी था, उनमे से भी तीन को बाद में माफ़ कर दिया गया।

मक्के वालों के दिल पर मुहम्मद साहब की इस बेहद नरमी का इतना गहरा असर पड़ा कि उनके कट्टर से कट्टर दुशमनों, यहां तक कि अबु सुफ़ियान ने और काबे के पुरोहितों तक ने इसलाम धर्म अपना लिया।

---

*Stanley Lane Poole

मक्का अब मुसलमान था। काबे के मन्दिर में मूर्तियों के रहने की अब कोई वजह न थी। इसके बाद एक दिन मुहम्मद साहब सीधे काबे के मन्दिर की तरफ़ गए। ऊपर आ चुका है कि काबे में ३६० बुत थे। एक एक बुत के सामने मुहम्मद साहब यह आयत पढ़ते जाते थे और उनके साथी बुत को उसकी जगह से हटाते जाते थे—"सचमुच अब हक़ (सच) क़ायम हो गया और बातिल (झूठ) उठ गया।"*

इस तरह उस दिन दोपहर तक मक्के और उसके आस पास के सब बुत हमेशा के लिये अपनी पूजा की जगहों से हटा कर अलग कर दिये गए। मूर्तियां हट गईं, फिर भी काबा पहले से भी ज्यादह शान के साथ सब अरबों का सब से बड़ा तीर्थ बना रहा।

ऊपर आ चुका है कि मुहम्मद साहब धर्म के मामले में किसी के साथ किसी तरह की भी ज़बरदस्ती को ठीक न समझते थे। यमन के ईसाई हाकिम ने इसी काबे के मन्दिर पर हमला करके उसे गिराना चाहा था। खुद क़ुरान के अन्दर उसके इस काम को बुरा बताया गया है। हमला करने वालों पर जो मुसीबत आई थी उसे क़ुरान ने 'ईश्वर की भेजी आफ़त' कहा है। जहां तक सब के लिए मज़हबों की आज़ादी का सवाल है, इसलाम मूर्ति पूजने वालों और निराकार के पूजने वालों में

---

* क़ुरान, १७,८१।

कोई फ़रक नहीं करता। मुहम्मद साहब ने हर धर्म के लोगों के मन्दिरों, मठों, गिरजों, सब की हिफ़ाज़त करना साफ़ शब्दों में बार बार मुसलमानों का धर्म (फ़र्ज़) बताया।

लेकिन अब न सिर्फ़ मक्के के अन्दर बल्कि सारे अरब में क़रीब क़रीब सब लोग मूर्तिपूजा छोड़ कर एक निराकार ईश्वर की पूजा अपना चुके थे। इन लोगों का विश्वास था, जैसा क़ुरान में लिखा है, कि काबे के क़ायम करने वाले हज़रत इबराहीम ने वहां कोई मूर्ति नहीं बिठाई थी, इबराहीम सिर्फ़ एक निराकार की पूजा करते थे और बाद में नासमझी के दिनों में काबे के अन्दर मूर्तियां रख दी गईं। जो हो, किसी भी धर्म की जगह के बारे में वहां के पूजा करने वालों को अपनी राय से जो चाहे बदलाव या सुधार करने का पूरा हक़ है।

हो सकता है मुहम्मद साहब यह भी समझते हों कि जिस तरह मैंने अरबों के दिलों को मूर्तिपूजा से हटा दिया है, उसी तरह अगर अपने जीते जी काबे के मन्दिर को इन सैकड़ों, रंग बिरंगी, सुडौल, और बेडौल लकड़ी पत्थर तांबे और आटे तक की मूर्तियों से ख़ाली न कर दिया तो हो सकता है मेरा सारा काम मेरे जाते ही समन्दर की एक लहर की तरह मिट जाय।

इसके अलावा काबे से इन बुतों का इस वक्त हटाया जाना किसी एक आदमी का किसी दूसरे की पूजा की चीज़ों को हटाना न था, बल्कि एक पूरी क़ौम का बीस साल तक ख़ूब सोचने समझने के बाद अपनी मरज़ी से अपने सैकड़ों बरसों

के पूजा के तरीक़ों में एक गहरा बदलाव या सुधार करना था। अरबों की सारी क़ौम उन दिनों अपनी केंचुली बदल रही थी। उसकी काया पलट हो रही थी। या गहरे दरदों के साथ एक नई अरब क़ौम जन्म ले रही थी। और मुहम्मद साहब ईश्वर के हाथों में इस कायापलट या केंचुली बदलने के ज़रिये थे या उस देश का तेज़ी से धड़कता हुआ दिल थे।

दोपहर को मुहम्मद साहब के हुकुम से काबे की चोटी से खड़े होकर बिलाल ने, जो पहले एक हब्शी ग़ुलाम थे, ऊंची आवाज़ से शहर और बाहर के तमाम लोगों को नमाज़ के लिये बुलाया। बिलाल इसलाम के सबसे पहले मुअज्ज़िन (अज़ान देने वाले) मशहूर हैं। अज़ान इसलाम में नमाज़ का कोई हिस्सा नहीं है। सिर्फ़ जहां आस पास इस तरह के मुसल-मान हों, जिन्हें नमाज़ के लिए बुलाना हो, वहां अज़ान बुलाने का तरीक़ा रखा गया है। नमाज़ में काबे की तरफ़ मुंह करने के बारे में, मुहम्मद साहब के पैग़म्बर होने के १३ साल बाद तक जब तक मुहम्मद साहब मक्के में रहे नमाज़ में किसी ख़ास तरफ़ मुंह करना ज़रूरी न था। मदीने पहुँचने के बाद सब मुसलमानों के एक जगह इकट्ठे होकर खुले नमाज़ पढ़ने का मौक़ा आया। मदीने में १६ महीने तक मुहम्मद साहब उत्तर की तरफ़ मुंह करके नमाज़ पढ़ाते रहे, और काबा मदीने से ठीक दक्खिन में है। मदीने से उत्तर में बल्कि उत्तर पच्छिम के कोने में यरूसलम है, जिधर यहूदी अपनी पूजा के वक़्त मुंह

किया करते थे। यही उस वक़्त तक मुसलमानों का भी क़िबला (पूजा में जिधर मुंह करते हैं) था। मदीने पहुँचने के सोलह महीने बाद, मुहम्मद साहब ने उत्तर से बदल कर दक्खिन की तरफ़ मुंह करके नमाज़ पढ़ाना शुरू किया। यहूदियों ने सबब पूछा। इस पर क़ुरान में यह आयत है—

"नासमझ लोग यह कहेंगे कि इन लोगों ने अपना क़िबला (जिधर मुंह करके नमाज़ पढ़ी जावे) क्यों बदल दिया। उन्हें जवाब दो कि पूरब और पच्छिम दोनों अल्लाह के हैं। वह जिसको चाहता है ठीक रास्ते पर लगाता है।"*

इसके बाद की यह आयत और भी साफ़ है—

"और पूरब और पच्छिम दोनों अल्लाह के हैं, इसलिये जिधर भी तुम मुंह करो उधर ही अल्लाह का मुंह है। सचमुच अल्लाह सब जगह और सब कुछ जानने वाला है।"†

काबे की यात्रा की, जिसे हज्ज कहते हैं, कई पुरानी बेतुकी रस्मों को मुहम्मद साहब ने सुधार दिया। जैसे पहले लोग बिल्कुल नंगे होकर काबे के चारों तरफ़ चक्कर लगाया करते थे। मुहम्मद साहब ने इस रिवाज को बन्द कर दिया और आगे के लिए कपड़े पहन कर चक्कर लगाने की हिदायत कर दी।

---

*क़ुरान २-१४२।

†२-११५

दोपहर की नमाज़ के बाद मुहम्मद साहब ने एक निराकार ईश्वर, और सब आदमियों के भाई भाई होने पर उपदेश दिया। उसके बाद .कुरैश के सरदारों ने मुहम्मद साहब को अपना सरदार मानते हुए अपनी पिछली भूलों के लिये दुःख जताया। मुहम्मद साहब की आंखों से आंसू गिरने लगे। उन्होंने जवाब दिया—

"हां आज मेरी तरफ़ से आप लोगों के ऊपर कोई इलज़ाम नहीं रहा। अल्लाह आप को माफ़ कर देगा। वह सब दयावानों से बढ़कर दयावान (रहमुर्रहमीन) है।"

इसके बाद अपने बाक़ी साथियों की तरफ़ मुड़कर मुहम्मद साहब ने उन्हें .कुरान की ये आयतें पढ़कर सुनाईं—

"बुराई का इलाज भलाई से करो।

"सबसे अच्छी बात वह करता है जो अल्लाह की तरफ़ लोगों को बुलाता है और .खुद नेक काम करता है और फिर कहता है कि मैंने अपने को अल्लाह पर छोड़ दिया है।

"भलाई और बुराई बराबर नहीं हो सकतीं, दूसरा तुम्हारे साथ बुराई करे तो तुम जवाब में उसके साथ भलाई करो; और वह जिसे तुमसे दुशमनी थी, तुम्हारा दिली दोस्त हो जायगा।

"जिन लोगों के दिलों में विश्वास है उनसे कहो कि वह उन लोगों को माफ़ करदें जिन्हें उस दिन का डर नहीं है जिस दिन वह अल्लाह के सामने जायंगे।

"और जल्दी ही अपने रब्ब से अपनी भूलों के लिये माफ़ी मांगो और उस स्वर्ग के लिये प्रार्थना करो जो धरती और आकाश जैसी फैली हुई है। वह उन लोगों के लिये है जो परहेज़गार यानी सदाचारी हैं, जो ग़रीबी अमीरी दोनों में दान देते रहते हैं, जो अपने ग़ुस्से को दबाते हैं और जो आदमियों को माफ़ करते हैं क्योंकि अल्लाह दूसरों के साथ नेकी करने वालों को ही प्यार करता है। *"

कुछ दिन मक्के में रहकर मुहम्मद साहब ने वहीं से चारों तरफ़ अपना धर्म समझाने वाले भेजे। इन लोगों को फिर साफ़ तौर पर यह हिदायत दी गई कि किसी के साथ सख़्ती न करना। ख़ालिद सदा से तबियत का तेज़ था। वह जुज़ैमह क़बीले के कुछ लोगों से लड़ पड़ा, जिसमें उस क़बीले के कुछ लोग मारे गए। मुहम्मद साहब को जब पता लगा उन्होंने दुःखी होकर दो बार चिल्लाकर कहा—"ऐ अल्लाह! मैं इस बारे में बेक़सूर हूँ" फिर ख़ालिद को बुलाकर डांटा और तुरन्त अली को भेजकर जिन जिन का जितना नुक़सान हुआ था सब से माफ़ी मांगी और सबको पूरा पूरा हरजाना दिलवाया। लिखा है कि अली ने "अपनी नरमी से और खुले दिल और खुले हाथों उनकी मदद कर फिर सबको ख़ुश कर लिया।" जुज़ैमह क़बीले के जिन लोगों को ख़ालिद ने मारा था, उन्हों ने इससे पहले एक मुसलमान लड़के अब्दुर्रहमान के बूढ़े बाप को और ख़ुद ख़ालिद के चचा को मार डाला था। अब्दुर्रहमान

* क़ुरान १२-२६, २३-६६, ४१-३३, ३४, ४४-१४, ३-१३२, १३३।

को ख़ुश करने के लिये ख़ालिद ने उससे आकर कहा "मैंने तुम्हारे बाप के मारने का बदला लिया है" लेकिन मुहम्मद साहब किसी से भी हत्या तक का बदला लेने को मना कर चुके थे। नौजवान अब्दुर्रहमान ने उलट कर जवाब दिया— "यूं क्यों नहीं कहता कि तूने अपने चचा की हत्या का बदला लिया है ! तू ने इस काम से इसलाम पर धब्बा लगाया है !"

..ब यह सवाल आया कि अब बाक़ी ज़िन्दगी मक्के में बिताई जावे या मदीने में तो मुहम्मद साहब ने यह कहकर मदीने के लिये फ़ैसला दिया कि मदीने वालों ने उन दिनों मेरा साथ दिया था, जब कोई मेरे साथ न था और मैंने वचन दिया था कि मैं उनके ही बीच में मरूंगा।

मक्के से उतर कर तायफ़ का नगर जिसमें 'लात' देवी का मशहूर मन्दिर था, पुराने अरब रिवाजों का सबसे बड़ा गढ़ था। १० साल पहले इसी नगर से मुहम्मद साहब लहू लुहान कर निकाले गये थे। तायफ़ के आस पास के कुछ क़बीलों ने अभी तक मदीने की नई क़ौमी सरकार या इसलाम धर्म दोनों में से किसी को नहीं अपनाया था। इस बार मुहम्मद साहब की मक्के की जीत ने उनकी दुशमनी की आग को भड़का दिया। तायफ़ के पास औतास की घाटी में कुछ पहाड़ी क़बीले मुसलमानों पर हमला करने के लिये जमा हुए। मुहम्मद साहब मक्के से रोकने के लिये निकले और हुनैन और औतास की लड़ाइयों में कम से कम ख़ून ख़राबी के बाद नई अरब क़ौमी

सरकार के ख़िलाफ़ इस आख़री बलवे को ठण्डा किया। इन लड़ाइयों में दुशमन को मारने की जगह मुसलमानों ने मुहम्मद साहब के हुकुम से उन्हें सिर्फ़ पकड़ कर ले आने की हिम्मत की। औतास की लड़ाई में उस हवाज़िन क़बीले के छै हज़ार आदमी पकड़ लिये गए, जिस क़बीले की धाया हलीमा ने पांच साल बालक मुहम्मद को दूध पिलाया था। बुढ़िया हलीमा अभी जीती थी। मुहम्मद साहब की जीत के बाद वह उनसे मिलने आई। मुहम्मद साहब ने खड़े होकर बड़ी इज़्ज़त से उसकी आवभगत की। अपनी चादर उतार कर उसके बैठने के लिये बिछा दी और उसके कहने पर उसी दम छहों हज़ार हवाज़िन क़ैदियों को छोड़ दिया।

मक्के लौटकर मुहम्मद साहब ने वहां के लोगों को धर्म की सीख देते रहने के लिये मुआज़ नामी एक आदमी को 'इमाम' बनाया और शहर के बन्दोबस्त के लिये एक नौजवान उतबह को शहर का हाकिम चुना। ख़ुद अपने साथियों को लेकर वह मदीने लौट आए। मदीने पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद तायफ़ के कुछ ख़ास ख़ास लोग मुहम्मद साहब के पास आए, उन्होंने दस साल पहले की भूल के लिये माफ़ी मांगी और अपने सारे क़बीले की तरफ़ से इसलाम धर्म अपनाने की इजाज़त चाही। तायफ़ मदीने की क़ौमी सरकार में मिला लिया गया।

'तइ' क़बीले का मुसलमान होना



इन दिनों ही 'तइ' कबीले ने इसलाम अपनाया जिसकी कहानी खासी मनभाती है। यह कबीला मदीने से कोई दो सौ मील उत्तर में शाम की सरहद पर रहता था। शाम के रोमी हाकिमों ने उसे मदीने की नई सरकार के खिलाफ़ गुटबन्दियों का अड्डा बना रखा था। वहां मज़हब की आज़ादी न थी। इसलाम फैलाने वाले वहां मार डाले जाते थे। मुहम्मद साहब ने अली को फ़ौज के साथ भेजा। ग़रज़ सिर्फ़ यह थी कि 'तइ' कबीले के सरदारों पर ज़ोर दिया जावे कि अपने इलाक़े में लोगों को मज़हब की आज़ादी दें और इसलाम फैलाने वालों को समझाने की इजाज़त हो। यह कबीला ऐसी जगह रहता था कि नई अरब सरकार के लिए उनकी दोस्ती बड़े काम की थी। हुनैन की लड़ाई तक में मुहम्मद साहब की फ़ौज के अन्दर इस तरह के बहुत से आदमी मौजूद थे जिन्होंने इसलाम धर्म नहीं अपनाया था, जो अभी तक अपने पुराने धर्मों पर ही क़ायम थे, लेकिन जिन्होंने सबके लिए की धर्म आज़ादी के

असूल को मान लिया था। और जो या तो मदीने की सरकार की प्रजा थे और या उनके क़बीले ने मदीने की सरकार के साथ दोस्ती कर ली थी।

'तइ' क़बीले के इलाक़े में जब अली पहुंचे तब अदी ताई उस क़बीले का सरदार था। यह अदी ताई दुनिया में मशहूर हातिम ताई का बेटा था। अदी अपने बाल बच्चों को लेकर भाग कर शाम चला गया। उसकी बहिन सफ़नाह और कुछ और लोग पकड़ लिए गए और मदीने में मुहम्मद साहब के सामने लाए गए। मुहम्मद साहब को जब पता लगा कि सफ़नाह उस हातिम ताई की लड़की है, जो अपने बड़े दिल, दया और दान के लिए सारी दुनिया में मशहूर था तो मुहम्मद साहब ने यह कह कर कि—"हातिम के अन्दर सचमुच वे सब भलाइयां मौजूद थीं, जो एक मुसलमान में होनी चाहियें, सचमुच अल्लाह ऐसे लोगों से प्रेम रखता है" सफ़नाह और उसके साथ के सब लोगों को उसी दम बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। अदी को जब यह मालूम हुआ वह मुहम्मद साहब से मिलने मदीने आया। मुहम्मद साहब उन दिनों अरब के बहुत बड़े हिस्से के मालिक थे। इस पर भी उनके सादे रहन सहन को देखकर अदी पर गहरा असर पड़ा। अदी लिखता है—

"उन्होंने (मुहम्मद साहब ने) मुझसे मेरा नाम पूछा। जब मैंने नाम बता दिया उन्होंने कहा मेरे साथ मेरे घर चलो। रास्ते में एक कमज़ोर दुबली औरत ने उनसे कुछ कहना चाहा। वे खड़े होकर

उसके मामलों पर बात चीत करने लगे। मैंने अपने दिल में सोचा कि यह ढङ्ग तो कुछ बादशाहों का सा ढंग नहीं है। जब हम उनके घर पहुंचे उन्होंने मुझे बैठने के लिये चमड़े का एक गद्दा दिया, जिसके अन्दर खजूर की पत्तियां भरी थीं और वे ख़ुद नंगी ज़मीन पर बैठ गये, मैंने फिर सोचा यह तो कोई शाहों का सा ढंग नहीं है।"

थोड़े ही दिनों में धीरे धीरे 'तइ' क़बीले के सब लोगों ने इसलाम धर्म अपना लिया। अपना इलाक़ा उन्हों ने मदीने के राज में जोड़ लिया और उस राज की हद उत्तर में दूर तक बढ़ गई।

हमें याद रखना चाहिये कि इस तमाम ज़माने में मुहम्मद साहब की ज़िन्दगी के बराबर दो पहलू थे। वह एक नए धर्म के चलाने वाले भी थे और मदीने की नई आज़ाद हुकूमत के सरपंच और सरदार भी थे। सन् ६३१ ईसवी में पता चला कि शाम की सरहद पर रोम के सम्राट की तरफ़ से फिर एक बड़ी फ़ौज अरब की इस नई क़ौमी हुकूमत को मिटाने के लिये जमा की जा रही है और सम्राट ने नए सिपाहियों को एक एक बरस की तनख़ाह पहले से देकर भरती किया है। मुहम्मद साहब चारों तरफ़ से अरब जवानों को जमाकर अरब की आज़ादी के लिए बढ़े। इतने ही में रोम के सम्राट को अपनी राजधानी के अन्दर नए बलवे का सामना करना पड़ा। रोम की फ़ौज सरहद से हटा ली गई। मुहम्मद साहब भी बिना किसी लड़ाई के शाम की सरहद से लौट आये।

मक्के की आख़री यात्रा

सन् ६३२ ईसवी में मुहम्मद साहब ने आख़री बार अपनी जन्म भूमि मक्के की यात्रा की। मुसलिम इतिहास में इसे 'हज्जतुलविदा' यानी विदाई की यात्रा या 'हज्जल अकबर' यानी 'बड़ी यात्रा' कहते हैं। इस बार एक लाख चालीस हज़ार आदमी उनके साथ मदीने से गए। मुहम्मद साहब अब ६२ बरस के हो चुके थे।

मक्के में हज्ज की रस्में पूरी करने के बाद अरफ़ात की पहाड़ी पर बैठकर, मुहम्मद साहब ने भरे हुए दिल से सब लोगों को यह उपदेश दिया—

"ऐ लोगो! मेरी बात ध्यान से सुनो क्योंकि मुझे नहीं मालूम कि इस साल के बाद मैं फिर कभी यहां तुम्हारे बीच आ सकूंगा या नहीं।

"ठीक जिस तरह इस नगर के अन्दर इस महीने में यह दिन पाक माना जाता है, इसी तरह एक दूसरे के लिये तुममें से हर एक का तन, उसका धन और उसका माल असबाब पाक

चीज़ है, कोई दूसरे के जान माल या असबाब को हाथ नहीं लगा सकता।

"अल्लाह ने हर आदमी के लिये बाप दादा की जायदाद से हिस्सा तय कर दिया है, इसलिये जो जिसका हक़ है वह उससे छीनने वाली कोई वसीयत ठीक नहीं मानी जायगी।

"रबीयाह के बेटे, हारिस के पोते, अब्दुलमुत्तलिब के पड़पोते और मेरे भतीजे अयास के ख़ून से लेकर, जिसे लैस के क़बीले वालों ने दूध पिलाकर पाला था और जिसे नासमझी के दिनों में हुज़ैल के क़बीले वालों ने मार डाला था, आज तक जितने ख़ून हो चुके हैं उनमें से किसी का भी किसी से बदला लेने की किसी को इजाज़त नहीं है, और आगे के लिये बदला लेने का यह रिवाज ही हमेशा के लिये बन्द किया जाता है।

"किसी जुर्म करने वाले पर सिवाय उस जुर्म के जो उसने ख़ुद किया हो और किसी बात का इलज़ाम न लगाया जायगा। किसी बाप से बेटे के जुर्म की या बेटे से बाप के जुर्म की पूछ ताछ न होगी।

"सचमुच सूद लेने का रिवाज नासमझी के दिनों का है, आगे के लिये इस रिवाज की बिलकुल मनाही की जाती है। तुम लोग अपने रुपयों का सिर्फ़ असल वापस ले सकोगे। इस बारे में न तुम किसी के साथ बेइन्साफ़ी करो न कोई तुम्हारे साथ बेइन्साफ़ी करे, और मेरे चचा अब्बास का जितना सूद लोगों के ज़िम्मे है, वह सब रद्द कर दिया गया।

"हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है, और अपने भाई की कोई चीज़ जब तक वह उसे किसी ठीक तरीक़े से न पावे किसी मुसलमान के लिए हलाल नहीं हो सकती।

"हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है। न कोई किसी पर ज़ुल्म करे न किसी का साथ छोड़े, और न कोई किसी को छोटा समझे। किसी के लिये भी अपने भाई मुसलमान को छोटा समझना बहुत ही बुरी बात है। हर मुसलमान की हर चीज़ उसका माल उसकी जान और उसकी आन हर मुसलमान के लिये इज़्ज़त की चीज़ है। ख़बरदार! आपस में एक दूसरे के ख़िलाफ़ किसी तरह का व्यापार या लेन देन न करना। तुम सब अल्लाह के बन्दे और एक दूसरे के भाई होकर रहना।

"ऐ मरदों! तुम्हारे हक़ हैं और ऐ औरतों! तुम्हारे भी हक़ हैं। लोगो! अपनी बीवियों से प्रेम करो और उनके साथ मेहरबानी का सलूक करो। सचमुच अल्लाह को बीच में डाल कर तुमने उन्हें अपने साथ लिया है और अल्लाह के हुकम से ही उनका तन अपने लिये हलाल ठहराया है। ध्यान रखो कि जिस चीज़ को अल्लाह सबसे ज़्यादह बुरा समझता है वह तलाक़ है।

"अपने ग़ुलामों के बारे में, ख़बरदार! उन्हें वैसा ही खाना खिलाना जैसा तुम ख़ुद खाते हो और उन्हें वैसे ही कपड़े पहनना जैसे तुम ख़ुद पहनते हो। कभी उनकी ताक़त से बाहर कोई काम करने का उन्हें हुकुम न देना, और अगर ऐसा हो ही तो तुम्हारा धर्म है कि उस काम के करने में तुम ख़ुद उन्हें मदद दो। तुम में से कोई

अगर बिना क़सूर अपने ग़ुलाम को पीटे या उसके मुंह पर तमाचा लगाए, तो इसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित्त यानी पाप धोने का ढङ्ग) यह है कि उस ग़ुलाम को उसी दम आज़ाद करदे। ध्यान रखो जो आदमी अपने किसी ग़ुलाम के साथ बुरा सलूक करेगा, उसके लिये स्वर्ग का दरवाज़ा बन्द हो जायगा। अपने ग़ुलामों को दिन में ७० बार माफ़ कर दो क्योंकि वे उसी अल्लाह के बन्दे हैं, जो तुम्हारा भी रब्ब है। उनके साथ किसी तरह के ज़ुल्म का बर्ताव नहीं होना चाहिये। अल्लाह तुम्हारी किसी बात से इतना ज़्यादह ख़ुश नहीं होता जितना ग़ुलामों को आज़ाद करने से।

"इसमें शक नहीं कि तुम अपने रब्ब के सामने जाओगे और वह तुमसे तुम्हारे कामों के बारे में पूछेगा। ख़बरदार! मेरे बाद तुम फिर विश्वास (ईमान) से हटकर अविश्वास (गुमराही) में न फंस जाना यानी विश्वास को छोड़ न बैठना और फिर से एक दूसरे की गरदनें काटने न लग जाना।

"जो लोग यहां मौजूद हैं वे ये सब बातें उन लोगों को जाकर सुना दें जो यहां नहीं हैं, हो सकता है कि जिससे कहा जावे वह जिसने यहां सुना है उससे ज़्यादह अच्छी तरह याद रखे।"

इसके बाद ऊपर आकाश की तरफ़ देखकर मुहम्मद साहब ने चिल्लाकर कहा—"ऐ रब्ब! मैंने तेरा पैग़ाम (सन्देसा) पहुंचा दिया और अपना फ़र्ज़ पूरा कर दिया। ऐ रब्ब! मेरी प्रार्थना है तू ही मेरा गवाह रहियो।"

इसके बाद उन्होंने अपने साथियों को लेकर मदीने लौटने की तय्यारी शुरू कर दी ।

इसलामी हुकूमत



उत्तर से दक्खिन तक शाम की सरहद से हिन्द महासागर तक अब मुहम्मद साहब के राज और उनकी ताक़त में कोई हिस्सेदार न था। रोम और ईरान दोनों के सम्राट अपने अपने यहां के घरेलू झगड़ों में फंसे हुए थे। उनमें से किसी में भी अरबों की नई बढ़ती हुई ताक़त को रोकने की हिम्मत न रह गई थी। ख़ुसरू परवीज़ ने मुहम्मद साहब के जिस खत को कुछ न समझ कर फाड़ कर फेंक दिया था, उसका ले जाने वाला अभी मदीने लौटकर पहुँचा भी न था कि परवीज़ के बेटे ने परवीज़ को मार डाला। यमन के अरब हाकिम को अपना और अपनी प्रजा का, दीन दुनिया दोनों का भला विदेशी ईरान से नाता तोड़ कर मदीने की क़ौमी सरकार के साथ नाता जोड़ने में ही दिखाई दिया। यमन का हाकिम और वहां के क़रीब क़रीब सब लोग इसलाम अपना चुके थे। मुहम्मद साहब ने अब अपने फैले हुए राज का ठीक ठीक बन्दोबस्त करने का काम अपने हाथ में लिया। अलग अलग सूबों में इस तरह के नए हाकिम

चुन कर भेजे गए जो वहां के मुसलमानों को धर्म के मामले में राह दिखावें और इन्साफ़ के साथ देश की हुकूमत करें।

इनमें जबल के बेटे मुआज़ को यमन भेजा गया। चलते वक़्त मुहम्मद साहब ने मुआज़ से पूछा—

"अपने सूबे की हकूमत में किस बात को सनद (प्रमाण) मान कर फ़ैसले करोगे ?"

मुआज़ ने जवाब दिया–"क़ुरान के हुकुम को।"

"लेकिन अगर क़ुरान में तुम्हें वहां ठीक बैठने वाला हुकुम न मिले ?"

"तब मैं पैग़म्बर की मिसाल को सामने रखकर चलूंगा।"

"अगर तुम्हें पैग़म्बर की मिसाल में भी ठीक बैठने वाली चीज़ न मिले ?"

"तब मैं अपनी अक़्ल से काम लूंगा"

मुहम्मद साहब ने ख़ुश होकर दूसरों से भी इसी तरह काम करने को कहा।

अली को पूरब की सरहद पर यमामा सूबे के बन्दोबस्त के लिये भेजा और चलते वक़्त हिदायत की "जब कभी कोई दो आदमी तुम्हारे पास इन्साफ़ के लिये आवें, तो बिना दोनों को अच्छी तरह सुने कभी फ़ैसला न करना।"

बहुत मिसालें इस बात की मिलती हैं कि राजा या हाकिम की हैसियत से मुहम्मद साहब मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों

में कभी किसी तरह का फ़रक़ न करते थे। यहां तक कि एक बार कुछ लोग इनकी इस बात से नाख़ुश होकर इसलाम छोड़कर फिर से पुराने धर्म में चले गए। क़ुरान में साफ़ आयत है कि इस तरह के लोगों के चले जाने की कोई परवा नहीं करना चाहिये।*

पैग़म्बर की शादियां

अब हमारे लिए मुहम्मद साहब की घरेलू ज़िन्दगी यानी उनकी शादियों पर एक निगाह डालना ज़रूरी है।

ऊपर आचुका है कि मुहम्मद साहब की पहली शादी २५ साल की उम्र में हुई। इन २५ साल तक अरब और ख़ास कर मक्के की बिगड़ी हुई हवा में भी मुहम्मद साहब का जीवन बेदाग़ रहा। जब कि उनकी उम्र के लड़के ऐश और आवारगी में अपना वक़्त खोते थे, मुहम्मद साहब या तो पहाड़ियों पर अकेले बकरियां चराया करते थे और या एकान्त में बैठे सोचा करते थे।

मुहम्मद साहब की उस ज़माने की नेकचलनी पर आज तक कोई उंगली नहीं उठा सका।

२५ से ५० साल की उम्र तक उन्हों ने अपनी सच्ची साथी ख़दीजा के साथ, जो उनसे १५ साल बड़ी थी, अपना धर्म सचाई से निबाहा। एक आदमी की बहुत सी बीवियों का रिवाज सारे यूरोप, अरब और उस ज़माने के क़रीब क़रीब सब देशों में इतना

आम था कि मुहम्मद साहब के अलावा उन दिनों मक्के के बड़े लोगों में शायद कम ही ऐसे रहे होंगे जिनकी सिर्फ़ एक बीवी हो।

इन दूसरे २५ साल के बारे में एक मवर्रिख़ (इतिहासकार) लिखता है—

"२५ साल तक मुहम्मद साहब अपनी बड़ी उम्र की बीवी के साथ वफ़ादारी से रहे। जब वह ६५ बरस की थी तब भी वह उससे वैसा ही एकसा प्रेम करते थे जैसा उस वक्त जबकि उनकी शादी हुई थी। उन तमाम २५ बरस के अन्दर मुहम्मद साहब की नेकचलनी के ख़िलाफ़ कहीं किसी तरह का सांस तक नहीं सुनाई दिया। उस वक्त तक की उनकी ज़िन्दगी को ख़ूब ग़ौर के साथ शीशे (ख़ुर्दबीन) से देखने पर भी कहीं कोई धब्बा दिखाई नहीं देता।"*

ख़दीजा के मरने के बाद ज़िन्दगी के आख़री १३ साल में उनकी नौ और शादियां हुईं। इन नौ शादियों के बारे में वही इतिहासकार लिखता है—

"इनमें से कुछ शादियां तो इस ख़याल से की गई थीं कि कुछ औरतों के ख़ाविन्द इसलाम की लड़ाइयों में मारे गए थे। उनका कोई सहारा न रह गया था। मुहम्मद साहब ने उनके ख़ाविन्दों को जोश दिला कर लड़ाई में भेजा था। उन बेवाओं को हक़ था कि मुहम्मद साहब का आसरा चाहें। और मुहम्मद साहब काफ़ी

*Stanley Lane Pool

दयावान थे। बाक़ी शादियों का मतलब सिर्फ़ राजकाजी था, यानी एक दूसरे के ख़िलाफ़ दलों के सरदारों को एक प्रेम डोर में बांधना।"*

यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि उन दिनों अरब में कोई भी इज़्ज़तवाली औरत बिना शादी किये किसी भी दूसरी सूरत में किसी के घर में रहना पसन्द न कर सकती थी। एक दूसरा इतिहासकार लिखता है—

"चाल चलन के ख़याल से मुहम्मद साहब बड़े ऊंचे दरजे के आदमी थे। जीवन की गहराई में वह इतने गहरे गए हुए थे कि यह हो ही नहीं सकता था कि वह अपनी ताक़त को भोग विलास में खो डालते।......वह समझते थे कि अपने असर और ताक़त को पक्का करने के लिये शादी एक बड़ा ज़बरदस्त ज़रिया है। हज़ारपा (कनखजूरे) की हज़ार टांगों की तरह शादी जगह जगह अपनी बाहें फैला देती है और ऐसे ऐसे नाते और रिश्ते जोड़ लेती है, जिन्हें वह वैसे ही चिपट जाती है जैसे घोंघा चट्टान को चिपटता है या वेताल-मछली अपने शिकार को। क़रीब क़रीब हमारे ज़माने तक यही उसूल यूरोप के राज काज का एक बड़ा हिस्सा रहा है।......

"यही ग़रज़ थी जिसने मुहम्मद साहब को कई शादियों के लिये तय्यार किया। मुहम्मद साहब के बड़े मिशन का यह एक ज़रूरी हिस्सा था।"†

* Stanley Lane Pool in his Introduction to Lane's Selections from the Quran.

† Islam, Her Moral and Spiritual Nature, by Major A. G. Leonard, PP. 79-80.

मुहम्मद साहब की इन नौ शादियों का थोड़े में हाल यह है—

ख़दीजा के बाद मुहम्मद साहब की दूसरी शादी उनके जीवन भर के साथी अबु बक्र की लड़की आयशा के साथ हुई। आयशा कुमारी थी, उसकी उम्र १८ साल की थी। अबु बक्र ने अपने तन, मन, धन से मुसीबत के वक़्त इसलाम की बड़ी सेवा की थी, जिसका कुछ ज़िक्र ऊपर आचुका है। ख़दीजा के मरने के बाद अबु बक्र के यह बात जी में जम गई कि मेरी बेटी पैग़म्बर को ब्याही जाय, उन्होंने बड़ी ज़िद के साथ पैग़म्बर से प्रार्थना की। अरब में किसी की इस तरह की प्रार्थना को ठुकरा देना उसकी बहुत बड़ी हेटी समझी जाती थी। मुहम्मद साहब ने इस प्रार्थना को मान कर अबु बक्र को अपना हमेशा के लिए अहसानमन्द बना लिया और साथ ही दोनों ख़ानदानों को भी हमेशा के लिये एक कर दिया। इसके बाद ज़िन्दगी भर उन्होंने और किसी भी कुमारी के साथ शादी नहीं की।

तीसरी शादी एक ग़रीब बुढ़िया सौदाह के साथ हुई। सौदाह मुहम्मद साहब के एक शुरू के साथी सकरान की बीवी थी। क़ुरैश के जुल्मों से बचने के लिये वह अपने पति के साथ इथियोपिया चली गई थी। वहां सकरान मर गया। सौदाह मक्के वापिस आई। मक्के में न कोई उसका मदद करने वाला था न कोई पूछने वाला। रिश्तेदारों तक ने उसको पालने से

इनकार कर दिया। बूढ़ी और लाचार सौदाह की प्रार्थना पर मुहम्मद साहब ने उसके साथ निकाह पढ़ाकर उसके अपने घर में रहने की राह निकाल दी।

चौथी शादी हज़रत उमर की बेवा लड़की हफ़सह के साथ हुई। हफ़सह का ख़ाविन्द बद्र की लड़ाई में मारा गया। उमर ने अपनी बेवा लड़की की फिर से शादी किसी अच्छे मुसलमान से करना चाहा। उसने उसमान से कहा उसमान ने इनकार कर दिया। उमर ने अबु बक्र से प्रार्थना की। अबु बक्र ने भी इनकार कर दिया। वजह यह थी कि हफ़सह उम्र, रंग और रूप से किसी के दिल को न भा सकती थी। अबु बक्र, उमर और उसमान का रुतबा मुसलमानों में बहुत ऊंचा था। उमर तेज़ मिज़ाज थे। उन्हों ने इन इनकारों को अपनी बेइज़्ज़ती समझा। लिखा है सारे मुसलमानों में झगड़ा फैल जाने का डर था। मुहम्मद साहब को पता चला। उमर को ठण्डा करने और झगड़े को ख़त्म करने लिए उन्होंने हफ़सह के साथ ख़ुद ब्याह कर लिया।

पांचवीं शादी ओहद की लड़ाई के एक साल बाद उमैयह की लड़की हिन्द के साथ हुई। उमैयह बड़ा असर वाला आदमी था। ओहद की लड़ाई में हिन्द का ख़ाविन्द घायल हो गया और आठ महीने बाद मर गया। बेवा हिन्द के कई बच्चे थे। बच्चों को पालने के लिये उसने दूसरा ब्याह करना चाहा। वह तेज़ मिज़ाज और लड़ाका मशहूर थी। उसके साथ

भी अबु बक्र और उमर दोनों ने ब्याह करने से इनकार कर दिया। उसके सबसे बड़े बेटे का नाम सलमह था, जिससे वह 'उम्म सलमह' यानी 'सलमह की माँ' कहलाती थी। दुखी होकर उसने ख़ुद मुहम्मद साहब से निकाह की प्रार्थना की। उन्होंने मान लिया और उसके और उसके बच्चों के पालने का ज़िम्मा ले लिया।

छठी शादी इस तरह हुई—

ज़ैनब उनकी फूफी की लड़की थी। ज़ैनब का बाप जहश क़ुरैश की बनी दूदान शाख़ से था। ये बनी दूदान इसलाम के मशहूर दुशमन अबु सुफ़ियान के नज़दीकी रिश्तेदार थे, लेकिन मुहम्मद साहब और इसलाम से इतना ज़्यादह प्रेम रखते थे कि मक्के से हिजरत के वक़्त वह सब के सब मर्द औरत और बच्चे मक्के में अपने घरों को ताला लगाकर मुहम्मद साहब के साथ मदीने चले आए थे। अबु सुफ़ियान को रोकने के लिये इस ख़ानदान की मदद मुहम्मद साहब के लिये बड़ी क़ीमती थी। मदीने पहुँचने के बाद ज़ैनब के माँ बाप ने उसकी शादी मुहम्मद साहब से कर देना चाहा। मुहम्मद साहब ने इनकार कर दिया। क़ुरैश में ख़ानदान का घमण्ड बेहद था। मुहम्मद साहब इस घमण्ड को तोड़ना चाहते थे और आदमी आदमी में बराबरी क़ायम करना चाहते थे। उन्हों ने बनी दूदान को सलाह दी कि ज़ैनब की शादी ज़ैद के साथ करदी जावे। ज़ैद वह ग़ुलाम था, जिसे मुहम्मद साहब ही ने आज़ाद किया था।

घमंडी बनी दूदान को यह बात पसन्द न आई। फिर भी मुहम्मद साहब के कहने सुनने पर उन्हें ज़ैनब की शादी ज़ैद के साथ कर देनी पड़ी।

ज़ैनब के अपने दिल से अपनी नसल का घमण्ड न मिट सका। एक गोरे अरब सरदार की लड़की और एक ग़ुलाम से ब्याही जाय, यह उससे सहा न जाता था। दोनों का जीवन सुखी न था। थक कर ज़ैद ने ज़ैनब को तलाक़ देना चाहा। उसने मुहम्मद साहब से इजाज़त मांगी। मुहम्मद साहब ने उससे पूछा—"क्यों क्या तूने ज़ैनब में कोई बुराई देखी है?" ज़ैद ने जवाब दिया—"नहीं, लेकिन मैं अब उसके साथ नहीं रह सकता।" मुहम्मद साहब ने ग़ुस्से से कहा—"जा, अपनी बीवी को अपने साथ रख और अल्लाह से डर।"*

लेकिन इस डांट से बहुत दिनों काम न चल सका। आख़िर ज़ैद ने ज़ैनब को तलाक़ दे दिया।

ज़ैनब अपने बाप के घर वापिस आगई। बाप ने एक दूसरे के बाद कई लोगों से ज़ैनब की दूसरी शादी करना चाहा। लेकिन किसी ने भी एक ऐसी औरत से शादी करना न चाहा जो एक ग़ुलाम की बीवी रह चुकी थी।

बनी दूदान को इसमें अपनी बहुत बड़ी हेटी दिखाई दी। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उनकी इस सारी बेइज़्ज़ती की ज़िम्मेवारी

---

* क़ुरान ३३-३७.

मुहम्मद साहब पर थी। उन्होंने फिर मुहम्मद साहब से ज़ैनब को अपने निकाह में लेने की प्रार्थना की। मुहम्मद साहब ने ज़ैद और ज़ैनब को बुलाकर फिर से उनमें सुलह करा देने की कोशिश की। लेकिन कोई फल न हुआ। मुहम्मद साहब के लिये कोई चारा न था। उन्हों ने ज़ैनब के साथ निकाह कर लिया। ज़ैनब की उम्र इस निकाह के वक्त पैंतीस साल से ऊपर थी।

सातवीं शादी एक बेवा जुवैरियह के साथ हुई। जुवैरियह का बाप हारिस बनी मुस्तलिक़ क़बीले का सरदार था। मदीने से दो सौ मील दूर समुन्दर के किनारे हारिस मारा गया और उस क़बीले के कोई दो सौ आदमी मुसलमानों ने पकड़ लिये। बनी मुस्तलिक़ ने सुलह चाही। दो क़बीलों या दलों में टिकाऊ सुलह की एक ज़रूरी शर्त उन दिनों हारे हुए क़बीले की तरफ़ से यह होती थी कि जीते हुए क़बीले का कोई खास आदमी हारे हुए क़बीले की किसी औरत के साथ शादी कर ले। इसी रिवाज पर ज़ोर देकर हारे हुए यूनानी सरदार सैल्युकस ने जीते हुए मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त से सुलह के वक्त इस बात पर ज़िद की थी कि चन्द्रगुप्त सैल्युकस की एक लड़की से शादी करे, और चन्द्रगुप्त को मानना पड़ा था। मुहम्मद साहब ने बनी मुस्तलिक़ की प्रार्थना पर उनके उस सरदार हारिस की बेवा लड़की जुवैरियह के साथ, जो लड़ाई में मर चुका था, शादी करके उस सारे क़बीले को मुसलमानों के साथ प्रेम डोर में बांध लिया।

इस शादी से दो सौ मुस्तलिक़ क़ैदी बिना किसी शर्त के एक दम छोड़ दिये गए। बरसों बाद जुवैरियह की इस शादी की बात करते हुए मुहम्मद साहब की दूसरी बीवी आयशा ने कहा था —"कोई औरत कभी अपने क़बीले वालों के लिये इससे बड़ी बरकत साबित नहीं हुई जितनी जुवैरियह अपने लोगों के लिये।"

ठीक इसी तरह ख़ैबर की लड़ाई के बाद मुहम्मद साहब ने आठवीं शादी बनी क़ुरैज़ह के सरदार अख़तब की बेवा लड़की सफ़ीयह के साथ की। सफ़ीयह की दो बार पहले शादी हो चुकी थी। उसका दूसरा खाविन्द ख़ैबर की लड़ाई में मारा गया था। सफ़ीयह यहूदी थी और मुहम्मद साहब से शादी करने के बाद भी आख़ीर तक अपने यहूदी धर्म पर ही चलती रही।

नवीं शादी मक्के के पुराने हाकिम और इसलाम के दुशमन क़ुरैश सरदार, अबु सुफ़ियान की बेवा लड़की उम्म-हबीबह के साथ हुई। उम्म-हबीबह का पहला मर्द इथियोपिया में अपने देश से दूर मरा था। मुहम्मद साहब के साथ शादी होने से पहले उम्म-हबीबह के कई बच्चे थे, जिनमें एक लड़की का नाम हबीबह था। ब्याह की ग़रज़ बिलकुल साफ़ थी।

दसवीं और आख़री शादी उन दिनों मक्के में हुई जब हुदैबियाह की सुलह के बाद मुहम्मद साहब तीन दिन की यात्रा के लिये मक्के गए हुए थे। यह शादी एक क़ुरैश सरदार हारिस

की बेवा लड़की मैमूनह के साथ थी। मुहम्मद साहब ने अपने एक चचा के ज़ोर देने पर यह शादी की थी और चचा की ग़रज़ पूरी हुई, यानी इस शादी से वलीद के बेटे ख़ालिद और आस के बेटे अमरू जैसे दो ज़बरदस्त दुशमन मुहम्मद साहब की तरफ़ हो गये।

अपनी इन सब बीवियों के साथ मुहम्मद साहब का बर्त्ताव हमेशा एक सा रहा। हम कह चुके हैं कि उस वक़्त तक दुनिया के शायद किसी देश में भी एक आदमी की एक से ज़्यादह बीवियां होना किसी तरह बुरा न समझा जाता था, और मुहम्मद साहब की इन शादियों की ग़रज़ साफ़ थी।

मुहम्मद साहब के दो लड़के और चार लड़किया हुईं। दोनों लड़के बचपन ही में मर गए। तीन लड़कियों की शादियां उन्हों ने अरब के पुराने धर्म के लोगों में कीं और एक लड़की फ़ातमा की शादी हज़रत अली के साथ।*

आखरी दिन

मुहम्मद साहब की उम्र ६३ साल की हो चली थी। उनका ज्यादह जीवन कड़ा और सादा था। उन्हें अपने ऊपर पूरा क़ाबू था। मौत के बुख़ार से पहले सिर्फ़ एक वार सन् ६ हिजरी में उनकी तबियत के कुछ ख़राब होने का ज़िक्र आता है। हो सकता था उनकी उम्र और ज्यादह लम्बी होती। लेकिन ख़ैबर की लड़ाई में जो ज़हर उन्हें दिया गया था उससे वह उस वक्त़ तो बच गए, पर उन्हें काफ़ी नुक़सान पहुँचा। एक बार उस ज़हर के असर को कम करने के लिये उन्होंने सींगी भी लगवाई फिर भी उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ती चली गयी। मुहम्मद साहब की अपनी राय यही थी कि आख़री बुख़ार उन्हें उसी ज़हर के असर से हुआ। इसके अलावा "मक्के में तकलीफ़ें, बेइज्ज़ती, मुसीबतें, क़ैद और शहर से निकाल दिया जाना, मदीने में एक ऐसे काम के लिये बेचैनी जिसका पूरा होना कई साल तक शक की बात रही, और दिन दिन बढ़ते हुए राज के सोच फ़िकर इन सब का भी उन पर बहुत बड़ा बोझ था।" इस

सबके अलावा क़ुरान के अलग अलग हिस्से जिस तरह सामने आए उसका भी मुहम्मद साहब की तन्दुरुस्ती पर गहरा असर पड़ा। जब कभी किसी ख़ास रूहानी मुशकिल या कठिनाई के वक्त उन्हें रास्ता न सूझता था, वह खाना पीना छोड़, चादर लपेट पड़ जाते थे, दुआएं मांगते थे और रोते थे। कभी कभी उन्हें कई कई दिन इसी तरह बीत जाते थे। उनका बदन बार बार कांपने लगता था और चादर आंसुओं और पसीने से मिलकर तर हो जाती थी। आख़ीर में वह उठते थे और जो फ़ैसला या जो शब्द उस वक्त उनके मुंह से निकलते थे, उसे वह अपने 'मालिक का सन्देसा,' अपने 'अल्लाह की वही' बताते थे। मुहम्मद साहब की इस तरह की वहियां मिलकर ही 'क़ुरान' कहलाती है। उनकी दूसरी मामूली कहावतें या हिदायतें 'हदीस' कहलाती हैं और उन्हें ईश्वर के हुकुम नहीं माना जाता। इसमें शक नहीं कि इन बार बार के अनोखे दरदों और बेचैनियों का असर मुहम्मद साहब के तन पर और उनकी नसों और दिमाग़ पर बहुत ही गहरा पड़ा। एक बार अबु बक्र मुहम्मद साहब की डाढ़ी में कुछ सफ़ेद बाल देखकर रोने लगे। मुहम्मद साहब ने कहा—"हां! यह सब उन दरदों और तकलीफ़ों का नतीजा है, जो वही की पैदायश के वक्त मुझे होते थे! सूरे हूद, सूरे अल-वाक़यह, सूरे अल कारयह* और उनके साथियों ने मेरे बालों को सफ़ेद कर दिया।"

---

*क़ुरान के हिस्सों के नाम।

मुहम्मद साहब को आख़री बुख़ार आया।

एक दिन आधी रात को जब मदीने के सब लोग पड़े सो रहे थे, वह सिर्फ़ एक आदमी को साथ लेकर शहर के बाहर क़बरिस्तान में गए और क़बरों के बीच में बैठ कर बहुत देर तक ध्यान में डूबे रहे। आख़िर उन्हों ने भरे दिल से कहना शुरू किया—

"ऐ क़बरों के रहने वालो! तुमपर सलाम (शान्ति) हो! अल्लाह तुम्हे और हमें सब को माफ़ कर दे! शान्त वह सवेरा हो जिस दिन तुम सब फिर से जागो, और सुखभरी उस दिन तुम्हारी हालत हो! तुम हम लोगों से पहले चले गए और हम तुम्हारे पीछे आरहे हैं!"

अगले दिन सवेरे अपने दोनो चचेरे भाइयों, अली और फ़ज़ल के सहारे वह मसजिद में गए। नमाज़ के बाद उन्हों ने लोगों से कहा—

"मुसलमानो! अगर मैंने तुम में से किसी को कोई नुक़सान पहुँचाया है, तो इस वक्त मैं जवाब देने के लिये मौजूद हूं। अगर तुममे से किसी का मुझे कुछ देना है तो जो कुछ आज दिन मेरे पास है सब तुम्हारा है।"

एक आदमी ने याद दिलाया कि मैंने आपके कहने से एक ग़रीब आदमी को तीन दिरहम दिये थे। मुहम्मद साहब ने उसी दम उसे तीन दिरहम दे दिये और कहा—"इस दुनिया में

झेंपना अच्छा है, जिससे हमें उस दुनिया में तकलीफ़ उठाना न पड़े।"

फिर उन्हों ने बड़े भरे हुए दिल से उन मुसलमानों के लिये अल्लाह से प्रार्थना की जो अपने धर्म के लिये जान दे चुके थे या जिन्हों ने धर्म के नाम पर तकलीफ़ें सही थीं। मक्के के मोहाजरीन की तरफ़ मुंह करके, 'अन्सार' की तरफ़ इशारा करते हुए उन्हों ने कहा—

"मुसलमानों की तादाद तो बढ़ेगी। लेकिन मदीने के 'अनसार' की तादाद अब नहीं बढ़ सकती। ये लोग ही मेरे कुटुम्बी थे जिन्हों ने मुझे रहने को घर दिया। जब दुनिया मुझे तकलीफ़ें दे रही थी उस वक़्त इन लोगों ने मुझ पर विश्वास किया और मुझे अपनाया।"

रोग और कमज़ोरी बढ़ती गई। जुमे को मसजिद में नमाज़ पढ़ाने के लिये उन्हों ने अबु बक्र को भेजा। उस दिन तक वह बराबर ख़ुद नमाज़ पढ़ाते थे। अबु बक्र को नमाज़ पढ़ाते देख कर लोगों में सनसनी फैल गई। कुछ ने समझा कि पैग़म्बर चल दिये। ख़बर पाते ही मुहम्मद साहब फिर अली और फ़ज़ल के कन्धों पर हाथ रखे मसजिद में आए। उन्हे देखते ही लोगों का रंग बदल गया। मुर्झाए हुए चेहरे खिल गए। अबुबक्र नमाज़ पढ़ाते पढ़ाते रुक गए। मुहम्मद साहब ने हुकुम दिया 'जारी रखो'। नमाज़ ख़त्म होने पर मुहम्मद साहब ने लोगों से कहा—

"मैंने सुना है अपने पैग़म्बर की मौत की यों ही बात सुनकर तुम लोग घबरा गए थे। लेकिन क्या मुझसे पहले का कोई पैग़म्बर हमेशा रहा है जो तुम समझते हो कि मैं कभी तुमसे अलग न हूंगा। हर चीज़ का वक्त तय है, जिसमें न जल्दी हो सकती है न उसे टाला जा सकता है। मैं उसी के पास जा रहा हूं जिसने मुझे भेजा था। और मेरी आख़री प्रार्थना तुम लोगों से यह है कि तुम आपस में इत्तफ़ाक़ से रहना, एक दूसरे से प्रेम करना, एक दूसरे की इज़्ज़त करना और हर नेक काम में एक दूसरे की मदद करना। एक दूसरे को धर्म से डिगने न देने में, अपने विश्वास को मज़बूत करने में, और नेक काम करने में, हिम्मत दिलाते रहना, यही लोगों की भलाई का रास्ता है। और सब रास्ते बरबादी के हैं।"

आख़ीर में उन्होंने क़ुरान की यह आयत लोगों को पढ़कर सुनाई—

"अल्लाह उस दुनिया में उन लोगों को ही सुख देगा, जो इस दुनिया में बड़े बनने की कोशिश नहीं करते, जो किसी के साथ बेइन्साफ़ी नहीं करते, उस दुनिया का आनन्द सिर्फ़ उन लोगों के लिए है जो इस दुनिया में परहेज़गारी से रहते हैं।"*

लोगों को मुहम्मद साहब का यह आख़री उपदेश था। मसजिद के पास ही आयशा की झोपड़ी थी। अली और फ़ज़्ल के कन्धों पर हाथ रखकर मुहम्मद साहब फिर आयशा के घर चले गए। उस दिन उन्हें बुख़ार का चौथा दिन था।

---

* क़ुरान २८, ८३।

सनीचर की रात को बुख़ार बहुत तेज़ हो गया। उनकी बेचैनी देखकर उनकी एक बीवी उम्म सलमा चिल्लाकर रोने लगी। मुहम्मद साहब ने डांट कर कहा—"ख़ामोश! जिसे अल्लाह पर भरोसा है वह कभी इस तरह नहीं चिल्ला सकता।" एक सवाल के जवाब में उन्होंने कहा—

"हां! उस अल्लाह की क़सम जिसके हाथों में मेरी जान है जब कभी इस दुनिया में ईश्वर में विश्वास रखने वाले किसी भी आदमी पर कोई मुसीबत या रोग आता है, तो अल्लाह उस मुसीबत के ज़रिये उसी तरह उसके गुनाहों को उससे अलग कर देता है जिस तरह पतझड़ की मौसम में दरख़्त से पत्ते झड़ते हैं।"

"हमारे दुःख हमारे पापों को धोने के लिये हैं। सचमुच अगर ईश्वर में विश्वास करने वाले किसी आदमी के एक कांटा चुभता है, तो अल्लाह उसके ज़रिये उसका रुतबा बढ़ा देता है और उसका एक पाप धुल जाता है।"

"जिसका विश्वास जितना पक्का होता है उतनी ही उसकी परख की जाती है। जिसका विश्वास अटल है उसी को दुःख भी ज़्यादह दिये जाते हैं। विश्वास कमज़ोर है तो दुःख भी वैसे ही होते है। लेकिन किसी सूरत में भी दुःखों में तब तक कोई माफ़ी न होगी, जब तक आदमी का एक एक पाप धुल कर वह ज़मीन पर बेदाग़ होकर न फिरने लगे।"

रात भर मुहम्मद साहब क़ुरान के वे सूरे दोहराते रहे जिनमें ईश्वर की तारीफ़ की गई है।

इतवार को कमज़ोरी बेहद थी। जिस दिन से बीमार पड़े थे मुहम्मद साहब लगातार उपवास कर रहे थे। उस दिन आधी बेहोशी की हालत में किसी ने उनके मुंह में कुछ दवा लाकर डाल दी। इस पर उन्होंने बड़ा दुःख माना और नाराज़ हुए।

एक बार उन्होंने कपड़ा मुंह से हटा कर कहा—"अल्लाह का कोप (ग़ज़ब) उन लोगों पर जो अपने पैग़म्बरों की क़बरों को पूजने लगते हैं। ऐ अल्लाह! मेरी क़ब्र की कभी कोई पूजा न करे!"

इतवार ही को उन्हों ने आयशा से कहा "अपने पास बिलकुल पैसा न रखो, जो कहीं कुछ बचाकर रख छोड़ा हो तो उसे ग़रीबों में बांट दो।" आयशा ने कुछ सोचा। उसने कहीं से किसी वक़्त के लिए छै सोने के दीनार अपने पास चुपके से बचाकर रख छोड़े थे। थोड़ी देर बाद मुहम्मद साहब ने फिर कहा कि जो कुछ हो मुझे दे दो। आयशा ने वह छै सोने के दीनार (मोहरें) मुहम्मद साहब के हाथ पर लाकर गिन दिये। मुहम्मद साहब ने उसी दम हुकुम दिया कि उन्हें कुछ ग़रीब कुटुम्बों में बांट दिया जाय। ऐसा ही किया गया। इस पर मुहम्मद साहब ने कहा—"अब मुझे शान्ति मिली! सचमुच अच्छा नहीं था कि मैं अपने अल्लाह से मिलने जाऊं और यह सोना मेरी मिलकीयत रहे।"

मुहम्मद साहब उसके बाद सचमुच बेपैसा थे। इतवार की रात दिया जलाने के लिए आयशा को एक पड़ोसी के यहां से तेल मांगना पड़ा, और ठीक मरने के वक़्त मुहम्मद साहब

की अपनी कवच (ज़िरह) क़रीब डेढ़ मन जौ के बदले गिरवी रखी हुई थी।

इतवार की रात बीमारी में कटी। सोमवार को सुबह बुख़ार कम हुआ, हालत कुछ अच्छी मालूम होने लगी। बाहर मसजिद के सहन में हज़ारों मर्द, औरत और बच्चे पैग़म्बर का हाल पूछने को जमा हुए। नमाज़ का वक्त आया। अबु बक्र नमाज़ पढ़ाने लगे। अभी पहली रकअत ही ख़त्म हुई थी कि आयशा की झोपड़ी का परदा उठा। दो आदमियों के सहारे मुहम्मद साहब बाहर आते दिखाई दिये। उनके चेहरे पर ख़ुशी थी। उन्हें देखते ही लोगों के मुर्झाए चेहरे खिल गए। मुहम्मद साहब ने मुसकरा कर अपने साथी फ़ज़ल से कहा—"सचमुच इस नमाज़ को दिखाकर अल्लाह ने मेरी आंखों को ठण्डा कर दिया!"

उसी तरह सहारे से मुहम्मद साहब नमाज़ के लिए खड़े लोगों की तरफ़ बढ़े। लोगों ने बीच से हट कर रास्ता बनाया। अबु बक्र नमाज़ पढ़ा रहे थे। उन्होंने उलटे पांव पीछे हटकर पैग़म्बर के लिये इमाम की जगह छोड़ना चाहा। पैग़म्बर ने हाथ के इशारे से उन्हें फिर आगे बढ़कर नमाज़ पढ़ाते रहने की हिदायत दी और ख़ुद उनका हाथ पकड़ कर सहारे से उनके पास ज़मीन पर बैठ गए। अबु बक्र ने नमाज़ पूरी कराई।

नमाज़ के बाद मुहम्मद साहब फिर आयशा की झोपड़ी में चले गए। वह बेहद थक गए थे। एक हरी दतून मांगकर उन्होंने

दांत साफ़ किये। कुल्ला करके लेट गए। आयशा का हाथ मुहम्मद साहब के दाहिने हाथ पर था। उन्हों ने आयशा से अपना हाथ हटा लेने का इशारा किया। थोड़ी देर में धीरे धीरे ये शब्द उनके मुंह से निकले—"ऐ अल्लाह! मुझे माफ़ कर और मुझे उस दुनिया के साथियों से मिला" फिर "हमेशा के लिये स्वर्ग!" "माफ़ी!" "हां! उस दुनिया के मुबारिक साथी!" इन शब्दों के साथ साथ मसजिद से लौटने के चन्द घंटे के अन्दर ही सोमवार १२ रबीउलअव्वल, सन् ११ हिजरी, ८ जून सन् ६३२ ईसवी को दोपहर के ज़रा बाद मुहम्मद साहब की आत्मा इस दुनिया से चल बसी।

बाहर मसजिद में लोगों की भीड़ थी। बहुतसों को विश्वास न होता था कि इसलाम के पैग़म्बर उठ गए। अबु बक्र ने अन्दर जाकर चेहरे से चादर उठाई और मुंह चूमकर कहा, "तू ज़िन्दगी में प्यारा था और मौत में भी प्यारा है!" फिर यह कह कर—"तू मेरे बाप और मां दोनों से ज्यादह प्यारा था! तूने मौत के कड़ुवे दुखों को चख लिया। अल्लाह की निगाह में तू इतना क़ीमती है कि वह तुझे यह प्याला दोबारा पीने को नहीं दे सकता।" अबु बक्र ने मुहम्मद साहब के चेहरे को दोबारा चूमा और फिर चेहरे को चादर से ढक कर अबु बक्र बाहर चले आये।

बाहर आकर अबु बक्र ने लोगों को क़ुरान की दो आयतों की याद दिलाई। एक वह जिसमें अल्लाह ने मुहम्मद से कहा है,

—"सचमुच, तू भी मरेगा और ये सब लोग भी मरेंगे।" और दूसरी यह—"मुहम्मद एक रसूल है, इससे ज्यादा कुछ नहीं, सचमुच उससे पहले सब रसूल मरते आए हैं। फिर अगर वह मरजावे या मारा जावे तो क्या तुम अपने धर्म से फिर जाओगे?" इसके बाद अबु बक्र ने साफ़ साफ़ शब्दों में कहा —"जो कोई मुहम्मद की पूजा करता है उसे जानना चाहिये कि मुहम्मद सचमुच मर गए। लेकिन जो कोई अल्लाह की पूजा करता है, उसे जानना चाहिये कि अल्लाह जिन्दा है और कभी नहीं मरता!"

अली, ओसाम, फ़ज़ल कुछ और लोगों ने मिलकर मुहम्मद साहब को नहलाया। जिन कपड़ों में वह मरे थे, उनके ऊपर दो सफ़ेद चादरें और लपेट दी गईं। सब से ऊपर यमन की एक धारीदार चादर डाल दी गई। २४ घंटे तक लाश इसी तरह पड़ी रही। अगले दिन मंगल को नगर और बाहर के सब लोगों ने यहां तक कि औरतों और बच्चों ने आकर पैग़म्बर के चेहरे को आख़री बार देखा। अबु बक्र और उमर ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई। उसी दिन शाम को आयशा की कोठरी में, ठीक उसी जगह जहां मुहम्मद साहब की आंख बन्द हुई थी उनके जिस्म को मिट्टी के सुपुर्द कर दिया गया।

हज़रत अबु बक्र का बयान है कि मुहम्मद साहब कहा करते थे कि—"नबियों का कोई वारिस (यानी उनके बाद

उनके माल का मालिक) नहीं होता। वे जो कुछ छोड़ जावें, ग़रीबों का है।" (बुख़ारी, मुसलिम, अबु दाऊद, नसाई।)

इसी असूल पर, मरने से पहले मुहम्मद साहब के अपने पास जो कुछ बच रहा था—एक सफ़ैद खच्चर, कुछ हथियार और थोड़ी सी ज़मीन—वह उन्होंने मुहताजों और अनाथों के लिए दान दे दी। (बुख़ारी, नसाई।)

आयशा का बयान है कि मरते वक़्त पैग़म्बर ने न कोई दीनार छोड़ा, न दिरहम, न ऊंट, न बकरी, न दास, न दासी और न कुछ और। (बुख़ारी, मुसलिम, अबु दाऊद, नसाई।)

मुहम्मद साहब के मरने के कुछ दिनों बाद अनस नामी एक आदमी के पास लकड़ी का एक प्याला था जिससे मुहम्मद साहब पानी पिया करते थे। वह बीच से कुछ फटा हुआ था। मुहम्मद साहब ने उसे लोहे की पत्ती से जोड़ रखा था। उनके मरने के बाद किसी तरह वह अनस को मिल गया। अनस ने लोहे की पत्ती को निकाल कर उसे चांदी के तार से जोड़ लिया था। (बुख़ारी)।

अब हमारे लिये मुहम्मद साहब के रहन सहन, और इस-लाम के ख़ास ख़ास असूलों को बयान करना बाक़ी है।

पैग़म्बर का रहन सहन



मुहम्मद साहब के मक्के के जीवन और उनकी वहां की तकलीफ़ों का ज़िक्र ऊपर आ चुका है।

मदीने में मुहम्मद साहब की ज़िन्दगी घरेलू जीवन और फ़क़ीरी दोनों का एक अजीब मेल थी। आख़ीर तक उनका रहन सहन हद दर्जे का सादा और मेहनती था। सरकारी टैक्स से, या जक़ात या सदक़े (दान) से एक कौड़ी भी अपने या अपने घरवालों के लिये लेना वह हराम समझते थे। किसी से मांगना भी वह ठीक न समझते थे। ख़ास ख़ास दोस्तों से हदीया या भेंट ले लेते थे, लेकिन ज़रूरत से ज्यादा कभी नहीं। उनकी अपनी मिलकीयत में कुछ खजूर के पेड़ और कुछ ऊंट और बकरियां थीं, जिनसे खजूर और दूध मिल जाता था। रात को जो कुछ सामान घर में बचता था वह ग़रीबों में बंटवा देते थे, अगले दिन के लिये बचा कर रखने को वह अल्लाह में विश्वास की कमी बताते थे। नतीजा यह था कि जब कभी खजूर की फ़सल न होती या जानवर दूध न देते होते

तो कभी कभी तीन तीन दिन उन्हें और उनके घरवालों को लगातार फ़ाक़ा करते हो जाते थे।* सिर्फ़ खजूर और पानी पर उन्हें महीनों बीत जाते थे। उनकी मौत के बाद आयशा ने एक बार कहा था—"कभी कभी महीनों बीत जाते थे और मुहम्मद के घर में चूल्हा न जलता था।" किसी ने पूछा—"तो फिर आप लोग जिन्दा कैसे रहती थीं?" जबाब दिया—"उन दो काली चीज़ों के सहारे (खजूर और पानी) और जो कुछ मदीने वाले हमें भेज देते थे, अल्लाह उनका भला करे! जिनके पास दूध देने वाले जानवर थे वे कभी कभी हमें दूध भेज देते थे।" आयशा का कहना है कि—"पैग़म्बर ने कभी एक दिन में दो तरह की खाने की चीज़ों का स्वाद नहीं लिया........हमारे घर में कोई चलनी नहीं थी। हम नाज कूट कर उसका छिलका फूक मारकर उड़ा देते थे।" रात को कई बार दिया जलाने के लिये तेल घर में न होता था। हदीसों में लिखा है कि भूख के सबब मुहम्मद साहब के पेट पर कभी कभी कपड़ों के नीचे पत्थर बंधा होता था। लेकिन घर में इस बात की कड़ी मनाही थी कि किसी बाहरवाले को घर की हालत की ख़बर न होने पावे। एक बार भूख की तकलीफ़ से उनकी किसी बीवी ने बेचैनी ज़ाहिर की। पैग़म्बर ने शान्ति से जवाब दिया "जो इन दुखों को न सह सके उसे हक़ है कि मुझसे तलाक़ लेकर जहां चाहे जाकर रहे।" लेकिन आख़ीर तक न उन्हों ने किसी बीवी

* Waqidi as quoted in Muir.

देते थे, अपनी बकरियों को आप दुहते थे, अपने हाथ से अपने कपड़ों में पेवन्द लगाते थे, अपने हाथ से अपनी चप्पल गांठते थे, .खुद अपने ऊंट का खरहरा करते थे। खजूर की चटाई या नंगी ज़मीन पर सोते थे। आख़री बीमारी के दिनों में एक बार पीठ पर बोरिये का निशान देखकर किसी ने इजाज़त चाही कि एक गद्दा बिछा दिया जावे। मुहम्मद साहब ने यह कहकर इनकार कर दिया कि "मैं आराम करने के लिये नहीं पैदा हुआ।"

हम ऊपर लिख चुके हैं कि मरते वक़्त उनका कवच (ज़िरह) डेढ़ मन जौ के बदले गिरवी रखा हुआ था। इस पर हालत यह थी कि अगर कोइ मेहमान उनके यहां आ जाता तो .खुद भूखे रहकर और कभी कभी अपने घरवालों को भूखा रखकर मेहमान को प्रेम के साथ खाना खिलाते। जबकि ईरान, रोम और इथियोपिया के राजदूत (एलची) मुहम्मद साहब के दरबार में आते जाते थे, उन दिनों भी अरबों का यह अनोखा बादशाह कभी किसी तरह के सिंहासन, तख़्त या किसी ऊंची चौकी पर नहीं बैठा। वह आम लोगों में मिलकर इस तरह ज़मीन पर आकर बैठ जाते थे, जिससे किसी को कोई फ़रक़ दिखाई न दे, और अगर कोई उनके आने पर इज़्ज़त के लिये खड़ा हो जाता तो वह दुखी और नाराज़ होते।

मुहम्मद साहब कभी रेशमी कपड़ा नहीं पहनते थे। वे कहा करते थे कि "धर्म वाले आदमी को कभी रेशमी कपड़े नहीं पहनने चाहियें।" * रंगीन कपड़ा वे कभी कभी पहन लेते थे। लेकिन सफ़ेद रंग का मोटा सूती कपड़ा ज्यादह पसन्द करते थे, और अकसर ऐसा ही पहनते थे। वह बेसिला कपड़ा ज्यादह पहनते थे। आमतौर पर एक सफ़ेद चादर नीचे से ऊपर तक लपेटे रहते, जिसके दोनों सिरे गर्दन के पीछे कन्धे के ऊपर बांध लेते। वह नंगे सर, नंगे पांव बहुत रहते थे। कभी कभी वह आधी आस्तीन का ढीला कुरता, लुंगी और सर पर साफ़ा भी बांध लेते थे। पाजामा उन्होंने कभी नहीं पहना। उन्होंने कभी एक लोटे से ज्यादा बरतन अपने पास नहीं रखे, जो मिट्टी का या लकड़ी का होता था।

उनके रहने का मकान कच्ची ईंटों का बना था। अलग अलग बीवियों के लिये अलग अलग झोपड़ियां थीं, जिनके बीच बीच में खजूर की टहनियों की गारा लिपटी दीवारें थीं। छाजन भी इन्हीं टहनियों का होता था। उनके घर में कोई किवाड़ न थे। इनकी जगह चमड़े या काले नमदे के परदे लटके रहते थे।

मुहम्मद साहब ऊंट या बकरी का मांस खा लेते थे। लेकिन आमतौर पर उनका खाना खजूर और पानी या जौ की रोटी और पानी होता था। दूध और शहद उन्हें पसन्द थे, लेकिन

---

* बक़्क़ीदी

इन्हें खाते कम थे। एक बार किसी ने बादाम का आटा लाकर उन्हें भेंट किया। उन्होंने यह कहकर लेने से इन्कार कर दिया —"यह फ़ज़ूलख़र्च लोगों का खाना है।" प्याज़ और लहसन से उन्हें इतनी सख्त नफ़रत थी कि कभी कोई चीज़ न खाते, जिसमें प्याज़ या लहसन पड़ा हो, और न किसी ऐसे आदमी के पास बैठना पसन्द करते, जिसके मुंह से प्याज़ या लहसन की बू आ रही हो। हुकुम था कि मसजिद में कोई आदमी प्याज़ या लहसन खाकर न आवे।

छोटे बड़े सबके साथ उनका बर्ताव सदा एकसा होता था। बच्चों से उन्हें ख़ास मुहब्बत थी। रास्ता चलते चलते रुक कर बच्चों के साथ गली में खेलने लगना उनके लिए रोज़मर्रा की बात थी। बीमारों को देखने जाना, मुसलमान या ग़ैरमुसलिम किसी का भी जनाज़ा (अरथी) जा रहा हो उठकर कुछ दूर उसके साथ जाना, और कोई छोटे से छोटा या ग़ुलाम भी अगर दावत दे तो उसकी दावत ख़ुशी से मानना उनके स्वभाव की ख़ास चीज़ें थीं।

"मुहम्मद साहब की एक ख़ास आदत थी छोटे से छोटे आदमियों के साथ बड़ी मुहब्बत और इज़्ज़त का बर्ताव करना, झुक कर चलना; सब पर दया करना, किसी के कहे या किये का बुरा न मानना, अपने ऊपर क़ाबू रखना, और दिल बड़ा और हाथ खुला रखना ये मुहम्मद साहब के स्वभाव की वह बातें थीं जो हर वक़्

चमकती रहती थीं और जिनकी वजह से आस पास के सब लोग उनसे प्रेम करने लगते थे।"*

ग़ुलामी का रिवाज उन दिनों अरब और दुनिया के ज्यादह देशों में मौजूद था। मुहम्मद साहब की बाबत लिखा है कि उन्हें ज़िन्दगी में जितने ग़ुलाम मिले, उन्हों ने उन सब को आज़ाद कर दिया। क़ुरान में बार बार ग़ुलामों के आज़ाद करने या कराने दोनों को एक बहुत बड़ा सवाब (पुण्य) बतमया गया है, और मुहम्मद साहब इसमें लोगों को ख़ूब मदद देते रहते थे और हिम्मत दिलाते रहते थे।

वह अकसर सोच में डूबे और उदास दिखाई देते। कभी कभी एक प्रेमभरी मुस्कराहट उनके चेहरे पर नज़र आती। जब वह पैदल चलते तो अकसर इतना तेज़ चलते कि दूसरों को भागकर उनका साथ देना पड़ता।

अपने उपदेशों में वह—"मैं तुम्हारी ही तरह एक आदमी हूँ।" इस पर बार बार ज़ोर दिया करते थे, और बार बार ही अपने गुनाहों की माफ़ी के लिये रो रो कर ईश्वर से प्रार्थनाएं करते थे। क़ुरान में इन दोनों बातों का कई बार ज़िक्र आता है।

क़ुरान में एक जगह आया है—"कहो कि अगर मैं (मुहम्मद) ग़लती करूं तो मेरे लिए और अगर मैं ठीक रास्ते

---

* Life of Mohammet, by Sir W. Muir

पर चलूं तो उस हिदायत की वजह से जो ईश्वर ने मुझे दी है। सचमुच वह सब कुछ सुननेवाला और नज़दीक है।" (३४-५०)

इसलाम धर्म का निचोड़

मुहम्मद साहब के धर्म के असूलों में दो सब से बड़ी चीज़ें ये हैं—

(१) 'तौहीद' यानी ईश्वर के एक होने में विश्वास करना और

(२) नेक कामों पर ज़ोर देना।

'तौहीद' यानी ईश्वर का एक होना इसलाम का सब से बड़ा असूल और क़ुरान के सारे उपदेशों का सार है। क़ुरान का ११२ वां सूरा (अध्याय)जो मक्के के शुरू के सूरों में गिना जाता है यह है—

"उस अल्लाह के नाम से जो रहमान (माँ की सी मुहब्बत से भरा हुआ) और रहीम (दयावान) है, कह दो कि अल्लाह एक है, और सब कुछ उसी अल्लाह के सहारे है, न वह ख़ुद कभी जन्म लेता है और न किसी को जनता है, कोई उस जैसा नहीं है, वह आप ही अपनी मिसाल है।"

क़ुरान के इस सूरे का नाम ही "अल इख़लास" (एक होना) है।

उपनिषदों के "एकमेवाद्वितीयम्" या "एको देवः सर्व भूतेषुगूढ़:" की तरह क़ुरान में बार बार आता है—"लाइल्लाह इल्लाहू" (सिवाय उस एक के दूसरा अल्लाह नहीं है)। उसी को क़ुरान के सबसे शुरू में "रब्बिल् आलमीन" (सब दुनियाओं या क़ौमों का रब्ब यानी पालने वाला) और सब से आख़ीर में "रब्बिन्नास" (सब आदमियों का रब्ब), "मलेकिन्नास" (सब का बादशाह) "इलाहिन्नास" (सब का पूज्य) कहा गया है।

ईश्वर के एक होने से ही क़ुरान ने सब आदमियों के एक होने का नतीजा निकाला है।

"कानन्ना सो उम्मतँव्वाहिदतन्" (सब आदमी एक उम्मत यानी एक क़ौम हैं) (२-२१३)

"वमा कानन्ना सो इल्ला उम्मतँव्वाहिदतन्" (और सब आदमी सिवाय एक क़ौम के और कुछ नहीं) (१०-१९)

"सचमुच तुम सब आदमी एक ही क़ौम हो, मैं तुम सब का रब्ब हूँ, तुम सब मेरी ही इबादत (पूजा) करो। लोगों ने आपस में अपने टुकड़े टुकड़े कर लिए हैं! लेकिन सब को अल्लाह ही के पास लौट कर जाना है। इस लिए जो कोई नेक काम करेगा और ईश्वर में विश्वास करेगा, उसे अपने किये का अच्छा फल मिलेगा" (२१-९२, ९३, ९४)

आख़री आयतों में क़ुरान के दोनों सब से बड़े असूल आगए। नेक कामों पर क़ुरान में इधर से उधर तक बार बार ज़ोर दिया गया है।

"सब आदमी एक ही क़ौम" के असूल से ही इसलाम ने छोटे बड़े, अमीर ग़रीब, ऊंच नीच, जाति पाँति, खानदान, नसल, रंग, ग़ुलाम और मालिक वग़ैरह के सब फ़रक़ों को मिटाकर सब आदमियों के बराबर होने पर बेहद ज़ोर दिया, और बताया कि "तुममें बड़ा वह है जो सब से ज़्यादह नेक और परहेज़गार हो।" क़ुरान और मुहम्मद साहब के दूसरे उपदेशों में यह बात बार बार दोहराई गई है।

इन दो मूल सिद्धान्तों (बुनियादी असूलों) के बाद जो दुनिया के सब मज़हबों में एक से पाए जाते हैं, मुहम्मद साहब ने अगर किसी बात पर सबसे ज़्यादह ज़ोर दिया है तो वह यह है कि दुनिया के सब धर्म एक हैं और सब सच्चे हैं। क़ुरान में बार बार ही इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि न मुहम्मद दुनिया में पहला या अनोखा रसूल है और न इसलाम दुनिया में कोई नया मज़हब है। क़ुरान कहता है कि दुनिया के शुरू से लेकर हर क़ौम और हर ज़माने में बराबर रसूल होते रहे हैं, और उन सब ने एक ही सच्चे सनातन (हमेशा से चले आने वाले) धर्म का उपदेश दिया है।

"दुनिया की कोई क़ौम ऐसी नहीं है जिसमें बुरे कामों के नतीजों से डर दिखाने वाला ईश्वर का कोई न कोई पैग़म्बर न पैदा हुआ हो।" (.क़ुरान ३५-२५)

"हर क़ौम में रसूल हुए हैं।" (१०-४८)

"ऐ मुहम्मद! सचमुच तुम इसके सिवाय और कुछ नहीं, तुम सिर्फ़ बुरे कामों के नतीजों से लोगों को डर दिखाने वाले हो, और दुनिया की हर क़ौम में इसी तरह के हिदायत करने वाले हुए हैं।" (१३-७)

"हर ज़माने में कोई न कोई ईश्वर की दी हुई किताब हिदायत के लिए रही है।" (१३-३८)

"सचमुच हमने दुनिया की हर क़ौम में रसूल भेजा जिसका उपदेश यही था कि ईश्वर की पूजा करो और बुराई से बचो।" (१६-३६)

क़ुरान बताता है कि हर मुसलमान क्या, हर आदमी का धर्म है कि वह तमाम मुल्कों, क़ौमों और ज़मानों के पैग़म्बरों की एक सी इज़्ज़त करे, उनमें किसी तरह का भी फ़रक़ करना पाप है, और क़ुरान उन सब के उपदेशों और धर्म की किताबों की सिर्फ़ तसदीक़ करता है यानी उन्हें सच्चा ठहराता है।

"परमेश्वर ने यह किताब (.क़ुरान) जिसमें सच्चाई की सीख है तुझ पर भेजी है। यह उन सब धर्म की किताबों की तसदीक़ करती यानी उन्हें सच ठहराती है जो इससे पहले आ चुकी हैं।" (३-२)

"कह दो हम परमात्मा पर विश्वास करते हैं और जो कुछ परमात्मा से हमें सीख मिली है उस पर विश्वास करते हैं और जो कुछ इबराहीम······मूसा, ईसा और दुनिया के और तमाम पैग़म्बरों को परमात्मा से सीख मिलती रही है उस सब पर विश्वास करते हैं। हम इनमें एक से दूसरे में किसी तरह का भी फ़रक़ नहीं करते। हम ईश्वर के हुकुम को मानते हैं। (उसकी सच्चाई जहां कहीं और जिस किसी की भी ज़बानी आई हो उस पर हमारा विश्वास है) (३-७८)

"हम अल्लाह के रसूलों में किसी तरह का फ़रक़ नहीं करते।" (२-२८५)

"जो लोग अल्लाह और उसके पैग़म्बरों में फ़रक़ करना चाहते हैं और कहते हैं कि इनमें से हम किसी को मानते हैं और किसी को नहीं मानते···उनके कुफ़्र (काफ़िर होना यानी ईश्वर का अहसान न मानना) में सचमुच कोई शक नहीं। (४-१४९)

"वे लोग जो उस सचाई पर विश्वास करते हैं जो इसलाम के पैग़म्बर पर आई है और उन सब सचाइयों पर भी विश्वास करते हैं जो इसलाम से पहले दुनिया में आ चुकी हैं, और जो उस दुनिया (परलोक यानी कर्म फल) पर विश्वास रखते हैं, वे अपने परमात्मा के बताए हुए ठीक रास्ते पर हैं और वे ही भलाई के रास्ते पर हैं।" (२-४,५)

सब मजहबों को सच्चा और सब के चलाने वालों को ईश्वर के भेजे हुए मानते हुए मुहम्मद साहब का कहना है कि हर

मज़हब के दो पहलू होते हैं, एक उसकी पूजा का तरीक़ा और दूसरा बुनियादी असूल। पहला देश काल के लिए ठीक अलग अलग मज़हबों में अलग अलग होता है और दूसरा सब धर्मों में एक है। पहले को क़ुरान में "शरअ" और "नुसुक" या "मिनहाज" (विधि विधान) का नाम दिया गया है और दूसरे को 'अल-दीन' (धर्म) या 'अल-इसलाम' का। इस 'अद्दीन' या 'अल इसलाम' की तरफ़ लोगों का फिर से ध्यान दिलाना ही क़ुरान अपना काम बताता है। और यह अद्दीन या अल-इसलाम एक ईश्वर को मानना और नेक काम करना है। क़ुरान अपने से पहले के सब मज़हबों को "इसलाम" कह कर पुकारता है।

"ऐ पैग़म्बर ! हमने हर गिरोह के लिये पूजा का एक ख़ास तरीक़ा (नुसुक) बना दिया है जिस पर वह अमल करता है। इस लिये लोगों को चाहिये कि इस बात में झगड़ा न करें।" (२२-६६)

"हमने तुममें से हर मज़हब के मानने वालों के लिये एक ख़ास विधि विधान (शरअ और मिनहाज) बना दिया है। अगर परमात्मा चाहता तो तुम सबको एक ही सम्प्रदाय (एक रिवाज मानने वाले) बना देता। लेकिन यह फ़रक़ इसलिये है कि (वक्त और हालत के लिये ठीक) तुम्हें जो हुकुम दिये गए हैं उन्हीं में तुम्हें परखे, इसलिये इन फ़रक़ों के पीछे न पड़ कर नेक कामों के करने में एक दूसरे से बढ़ने की कोशिश करो, (क्योंकि असली काम यही है)।" (५-४८)

"तुम्हारा रब्ब यह नहीं कर सकता कि जिन लोगों के विश्वास ग़लत हैं लेकिन जो नेक काम करते हैं उन्हें बरबाद करदे, वह चाहता तो सबके विचार एक ही से कर देता। लेकिन इन बातों में लोगों में मतभेद रहेगा। [११-११७,११८]

"और (देखो) नेकी की राह यह नहीं है कि तुमने (पूजा के वक्त) अपना मुंह पूरब की तरफ़ कर लिया या पच्छिम की तरफ़ (या इसी तरह की कोई दूसरी बात ऊपरी रस्म रिवाज की करली)। नेकी की राह तो उसकी राह है, जो परमात्मा पर, आख़रत अपने ईश्वर के सामने जाने) के दिन पर, फ़रिश्तों पर, ईश्वर की दी हुई सब किताबों और सब पैग़म्बरों पर विश्वास करता है, अपना प्यारा धन रिश्तेदारों, अनाथों (यतीमों), ग़रीबों, मुसाफ़िरों और मांगनेवालों की राह में, और ग़ुलामों को आज़ाद कराने में ख़र्च करता है, नमाज़ पढ़ता है, अपनी कमाई में से दान (ज़कात) देता है, जब किसी को वचन देता है तो उसे पूरा करता है, दुखों, मुसीबतों और घबराहट के वक्त धीरज बनाए रखता है, याद रखो, ऐसे ही लोग सच्चे दीनदार हैं और वे ही धर्मात्मा (मुत्तक़ी) हैं।" (२-१७७)

"सचमुच निजात (मुक्ति) का रास्ता खुला हुआ है, वह किसी ख़ास गिरोह के लिये नहीं है। जिस किसी ने परमात्मा के आगे सर झुकाया और जो सदाचारी (नेक काम करने वाला) हुआ वह चाहे यहूदी हो, या ईसाई या कोई और, वह अपने रब्ब से फल पावेगा। उसके लिये न किसी तरह का डर है न कोइ ग़म।" (२- ११२)

"जो लोग (मुहम्मद पर) ईमान लाए हैं चाहे वे हों, या वे लोग हों जो यहूदी या ईसाई या साबी (पुराने ज़माने का एक मज़हब) हैं, कोई भी क्यों न हो, और किसी गिरोह का क्यों न हो, अल्लाह का क़ानून मुक्ति के लिये यह है कि, जो कोई भी अल्लाह पर और आख़िर में एक दिन सबको अपने कामों का फल मिलने पर, विश्वास करता है और नेक काम करता है, वह अपने विश्वास और अपने अच्छे कामों का फल अपने ईश्वर से ज़रूर पाएगा। उसके लिये न किसी तरह का डर है और न कोई ग़म। [२-५९]

क़ुरान का दावा है कि सब धर्मों के चलाने वालों ने इसी बुनियादी असूल का उपदेश दिया है—'एक ईश्वर की पूजा और नेक काम।' इसी को क़ुरान 'इसलाम' कहता है और सब पुराने धर्मों के उन मानने वालों को जो इस मूल सिद्धान्त [बुनियादी असूल] पर अमल करते हैं क़ुरान 'मुसलिम' कहकर पुकारता है। और दूसरी बातों को, जैसे पूजा का तरीक़ा, क़ुरान काम चलाने के तरीक़े बताता है और इसी एक मूल सिद्धान्त पर दुनिया के सब आदमियों को एक भाईचारे में बंध जाने का उपदेश देता है।

क़ुरान में उन्हीं कामों को अच्छा बताया गया है जिन्हें सब अच्छा मानते हैं और उन्हें बुरा बताया गया है जिन्हें सब बुरा समझते हैं, और अच्छे कामों के लिये 'मारूफ़' और बुरे कामों के लिये 'मुनकर' शब्द जो क़ुरान में आये हैं उनके यही माइने हैं।

" क़ुरान ने न सिर्फ़ उन सब धर्म चलाने वालों को ठीक माना, जिनके नामलेवा उसके सामने थे बल्कि साफ़ शब्दों में कह दिया कि मुझसे पहले जितने भी रसूल और धर्म चलानेवाले आ चुके हैं मैं सबको ठीक मानता हूं और उनमें से किसी एक के न मानने को भी ईश्वर की सचाई से इनकार करना समझता हूं। उसने किसी धर्मवाले से यह नहीं चाहा कि वह अपने धर्म को छोड़ दे, बल्कि जब कभी चाहा तो यही चाहा कि सब अपने अपने धर्मों की असली तालीम पर अमल करें, क्योंकि सब धर्मों की असली तालीम एक ही है। न तो उसने कोई नया सिद्धान्त सामने रखा और न कोई ख़ास रस्म नई निकाली। उसने सदा उन्हीं बातों पर ज़ोर दिया जो दुनिया के सब धर्मों की सबसे ज़्यादा जानी बूझी हुई बातें रही हैं—यानी एक जगदीश्वर की पूजा और नेक चलनी की ज़िन्दगी। उसने जब कभी लोगों को अपनी तरफ़ बुलाया है तो यही कहा है कि अपने धर्मों की असली तालीम को फिर से ताज़ा करलो, तुम्हारा ऐसा करना ही मुझे मान लेना है।"*

इस तरह मुहम्मद साहब के उपदेशों का सार या क़ुरान के ख़ास असूल यह हैं—

१—सिर्फ़ एक ईश्वर को मानना और उसी की पूजा करना,

२—नेक काम करना और बुरे कामों से बचना, और

३—सब धर्मों को जड़ में एक मानना और सब धर्मों के चलाने वालों और महापुरुषों का एक सा आदर [इज़्ज़त] करना।

*तरजुमानुल क़ुरान, लेखक-मौलाना अबुल कलाम आज़ाद।

उपदेश और प्रार्थनाएं (दुआएं)

अब हम मुहम्मद साहब के कुछ फुटकर उपदेश नमूने के तौर पर नीचे देते हैं—

अमरू लिखता है—मैंने पैग़म्बर से पूछा "इसलाम क्या है ?" उन्हों ने जवाब दिया "ज़बान को पाक रखना और मेह्-मान की ख़ातिर करना।" मैंने पूछा "ईमान क्या है ?" उन्हों ने कहा—"सब्र करना और दूसरों की भलाई करना।"

—अहमद

— —

अबु उमामह लिखता है किसी ने पूछा "ऐ पैग़म्बर ! ईमान क्या है ?" उन्होंने जवाब दिया—"जब तुझे नेक काम करने से ख़ुशी हो और बुरा काम करने से दुख हो तब तू ईमानवाला है।" उसने पूछा "और गुनाह क्या है ?" जवाब मिला—"जब कभी किसी काम के करने से तेरी आत्मा को चोट पहुँचे, उसे मतकर।"

—अहमद

मुहम्मद साहब ने कहा—"ईमान आदमी को हर तरह के जुल्म से रोकने के लिये है, कोई मोमिन (ईमान वाला) किसी पर जुल्म नहीं कर सकता।" —अबु हुरैराह, अबु दाऊद

—

एक आदमी ने पूछा—"ऐ पैग़म्बर! इसलाम की सबसे बड़ी पहचान क्या है?" जवाब मिला—"भूखों को भोजन देना, और जिन्हे जानते हैं और जिन्हें नहीं जानते उन सबको सलाम करना।" (अरबी में 'सलाम' के माइने दूसरे की 'सलामती' यानी उसका भला चाहना है) —मुसलिम

—

मुहम्मद साहब ने कहा—"वह आदमी मोमिन (ईमान-वाला) नहीं है, जो ख़ुद पेट भरकर खा लेता है जबकि उसका पड़ौसी पास ही भूखा पड़ा है।" —बैहक़ी

—

"मोमिन वह है जिसके हाथों में सब आदमी अपनी जान और माल को सौंप कर बेखटके रहें।" —बुख़ारी, मुसलिम

—

"अगर मोमिन होना चाहता है तो अपने पड़ौसी का भला कर, और अगर मुसलिम होना चाहता है तो जो कुछ अपने लिये अच्छा समझता है वही सब के लिये अच्छा समझ। और बहुत मत हंस, क्योंकि सचमुच ज़्यादह हंसने से दिल सख़्त होजाता है।" —तिरमिज़ी

—

"ताक़तवर वह नहीं है जो दूसरों को नीचे गिरादे, हममें ताक़तवर वह है जो अपने गुस्से को क़ाबू में रखता है।"

—बुखारी, मुसलिम

अब्दुल्लाह कहता है हम एक बार पैग़म्बर के साथ सफ़र कर रहे थे। हमने एक चिड़िया देखी जिसके साथ दो बच्चे थे। हमने बच्चों को पकड़ लिया। उनकी मां फड़फड़ाने लगी। पैग़म्बर ने हमसे आकर कहा—"इसके बच्चे छीनकर इसे किसने सताया ? इसके बच्चे इसे लौटा दो।"

एक जगह हमने चीटियों (दीमकों) का घर जला दिया था। पैग़म्बर ने देखकर पूछा, "यह किसने जलाया ?" हमने बता दिया कि हमने। पैग़म्बर ने कहा—"सिवाय उस अल्लाह के जो आग का मालिक है और किसी को हक़ नहीं है कि दूसरे को आग से सज़ा दे।"

—अबु दाऊद

एक आदमी मुहम्मद साहब के पास आया। उसके पास एक दरी में कुछ लिपटा हुआ था। उसने कहा—"ऐ पैग़म्बर ! मैं जंगल से आ रहा था। मैंने चिड़ियों के बच्चों की आवाज़ सुनी। कुछ बच्चों को पकड़ कर दरी में लपेट लिया। उनकी मां फड़फड़ाने लगी। मैंने दरी खोल दी। मां आकर अपने बच्चों में गिर गई। मैंने उसी में मां को भी लपेट लिया। ये सब इस दरी में हैं।" पैग़म्बर ने उसे हुकुम दिया—"अभी इसी दम

जाकर मां और उसके बच्चों दोनों को जहां से लाए हो ठीक वहीं छोड़ आओ।" उसने ऐसा ही किया। —अबु दाऊद

एक बार एक आदमी किसी चिड़िया के घोसले में से कुछ अंडे चुरा लाया। पैग़म्बर ने उन्हें फ़ौरन फिर उसी घोसले में रखवा दिया। —बुख़ारी

एक जनाज़ा (मुर्दे की अरथी) पास से निकला। मुहम्मद साहब उसकी इज्ज़त के लिए खड़े हो गए। एक आदमी ने कहा—"यह तो एक यहूदी का जनाज़ा है।" उन्होंने जवाब दिया—"क्या यहूदी के जान नहीं होती ?"

—बुख़ारी, मुसलिम

किसी ने पैग़म्बर से कहा—"मुशरिकों (एक अल्लाह के साथ दूसरे देवताओं के पूजने वालों) के खिलाफ़ अल्लाह से दुआ कीजिये और उन पर लानत भेजिये।" पैग़म्बर ने जवाब दिया —"मुझे सिर्फ़ दया के लिये भेजा गया है, शाप देने (बददुआ देने) के लिये नहीं भेजा गया।" —मुसलिम

"किसी भी नशे की चीज़ को काम में लाना सब गुनाहों का गुनाह है। —रज़ीन

मुहम्मद साहब की तलवार की मूठ पर ये शब्द खुदे हुए थे—"जो तेरे साथ बेइन्साफ़ी करे उसे तू माफ़ कर दे, जो तुझे

अपने से अलग करदे उससे मेल कर, जो तेरे साथ बुराई करे उसके साथ तू भलाई कर, और हमेशा सच्ची बात कह चाहे वह तेरे ही खिलाफ़ क्यों न जाती हो।"

—रज़ीन

——

सब जानदार परमात्मा का कुनबा हैं, और उन सबमें परमात्मा को सबसे प्यारा वह है, जो परमात्मा के इस कुनबे का भला करता है।

—बैहक़ी

——

मुहम्मद साहब ने एक बार कहा—मरने के बाद अल्लाह पूछेगा ऐ आदमी के बेटे! मैं बीमार था और तू मुझे देखने नहीं आया!" आदमी कहेगा, "ऐ मेरे रब्ब! मैं तुझे देखने के लिये कैसे आ सकता था, तू तो सारी दुनिया का मालिक है?" अल्लाह फिर पूछेगा—"ऐ आदमी के बेटे! मैंने तुझसे खाना मांगा था और तूने मुझे खाना नहीं दिया!" आदमी कहेगा "ऐ मेरे रब्ब! तू तो सारी दुनिया का मालिक है मैं तुझे कैसे खाना दे सकता था?"

अल्लाह पूछेगा—"ऐ आदमी के बेटे! मैंने तुझसे पानी मांगा और तूने मुझे पानी नहीं दिया।" आदमी कहेगा "ऐ मेरे रब्ब! मैं तुझे कैसे पानी दे सकता था, तू तो सारी दुनिया का मालिक है?" अल्लाह जवाब देगा—"क्या तुझे मालूम नहीं था कि मेरा एक बन्दा बीमार था? और तू उसे देखने नहीं गया। क्या तुझे यह मालूम नहीं था कि अगर तू उसे देखने जाता तो सच-

मुच मुझे उसके पास पाता? क्या तुझे मालूम नहीं था कि मेरे एक बन्दे ने तुझ से खाना मांगा था और तूने उसे खाना नहीं दिया? क्या तू नहीं जानता था कि अगर तू उसे खाना देता तो मुझे उसके साथ देखता? मेरे एक बन्दे ने तुझसे पानी मांगा और तूने उसे पानी नहीं दिया। अगर तू उसे पानी दे देता तो सचमुच मुझे उसके साथ पाता।"

—मुसलिम

"अल्लाह के बन्दों में कुछ लोग ऐसे हैं जो न पैग़म्बर हैं और न शहीद, लेकिन जिन्हे अल्लाह के सामने इज़्ज़त पाते देख कर पैग़म्बर और शहीद भी डाह (हसद) करेंगे। ये वह लोग हैं जो सिर्फ़ अपने रिश्तेदारों से ही नहीं बल्कि सब आदमियों से प्रेम करते हैं। इन लोगों के चेहरे अल्लाह के नूर से चमकेंगे। दूसरे सब लोगों के लिये चाहे दूसरी दुनिया में कुछ भी डर या रंज हो या न हो इनके लिये न कोई डर होगा और न कोई रंज।"

—अबु दाऊद

एक बार मुहम्मद साहब सफ़र से लौटकर मदीने आए। वह सीधे अपनी बेटी फ़ातमा से मिलने के लिए उसके घर गए। मकान में दो चीज़ें नई थीं। एक रेशमी कपड़े का टुकड़ा परदे की तरह एक दरवाज़े पर लटका हुआ था और फ़ातमा के हाथों में चांदी के कड़े थे। देखते ही मुहम्मद साहब उलटे पांव लौट आए और मसजिद में बैठ कर रोने लगे। फ़ातमा ने अपने बेटे

हसन को यह पूछने के लिए भेजा कि नाना इतनी जल्दी क्यों लौट गए। हसन ने जाकर नाना से वजह पूछी। जवाब मिला —"मैं यह देख कर शरमा गया कि मसजिद में लोग भूखे बैठे हों और मेरी लड़की चांदी के कड़े पहने और रेशम काम में लावे।" हसन ने मां से जाकर कह दिया। फ़ातमा ने तुरत कड़ों को तोड़कर उसी रेशम के टुकड़े में बांध कर बाप के पास भेज दिया। मुहम्मद साहब ने ख़ुश होकर उन्हें बेचकर रोटियां मंगाईं और ग़रीबों में बांट दीं और फिर फ़ातमा के पास जाकर कहा "अब तू सचमुच मेरी लड़की है।"

—बुख़ारी

"अल्लाह रहीम (दयालु) है। वह रहम दिलों पर रहम करता है। जो लोग ज़मीन पर हैं उन पर तुम रहम करो और वह जो आसमान पर है तुम पर रहम करेगा।"

—अबु दाऊद, तिरमिज़ी

लड़ाई के दिनों में किसी ने आकर कहा कि "ऐ पैग़म्बर! मैं (अल्लाह के लिये) लड़ाई में जाना चाहता हूं।" मुहम्मद साहब ने उससे पूछा, "क्या तेरी मां जिन्दा है?" उसने कहा "हां!" उन्हों ने फिर पूछा—"क्या कोई और उसका पालने वाला है?" उसने जवाब दिया—"नहीं!" मुहम्मद साहब ने कहा, "तो जा अपनी मां की सेवाकर क्योंकि सचमुच उसी के क़दमों के नीचे स्वर्ग है।"

—नसाई

"अल्लाह ने मुझे हुकुम दिया है झुककर चलो और छोटे बनकर रहो, जिससे कोई दूसरे से ऊपर न उठे न दूसरे से बड़ा होने का घमण्ड करे। जिस किसी के दिल में रत्ती भर भी घमण्ड है, वह हरगिज़ बहिश्त में नहीं जा सकता। सब आदमी आदम की औलाद हैं और आदम ख़ाक से पैदा हुआ था।"—

—अबु दाऊद, मुसलिम, तिरमिज़ी

अनस लिखता है कि मेरे सामने जब कभी किसी ने पैग़म्बर से आकर यह शिकायत की कि उस आदमी ने मुझे जान या माल का नुक़्सान पहुंचाया है और मुझे बदला लेने की इजाज़त दीजे, पैग़म्बर ने हमेशा सब को यही जवाब दिया "माफ़ कर दो !"

—अबु दाऊद, नसाई

"सब से बड़े गुनाह ये हैं—शिर्क (यानी एक अल्लाह के साथ किसी दूसरे को उसके बराबर मानना), माता पिता का हुकुम न मानना, किसी जानदार को ईज़ा यानी दुःख पहुँचाना, झूठी क़सम खाना और झूठी गवाही देना।"

—बुख़ारी, मुसलिम

"वे लोग हत्या से सब से ज़्यादह बचते हैं, जो ईमान रखते हैं।"

—अबु दाऊद

"जो आदमी एक तरफ़ तो नमाज़ें पढ़ेगा, रोज़े रखेगा और ख़ैरात (दान) करेगा और दूसरी तरफ़ किसी को बुरा कहेगा या किसी पर झूठा इलज़ाम लगाएगा या बेईमानी करके किसी का माल खा जायगा या किसी का ख़ून बहायेगा या किसी को दुख पहुँचायेगा, ऐसे आदमी की नमाज़ें उसके रोज़े और ख़ैरात कोई उसके काम न आवेंगे। उसने और जो कुछ भी अच्छे काम किये होंगे वह सब उसके हिसाब में से काट काट कर उन लोगों के हिसाब में जोड़ दिये जायंगे, जिनके साथ उसने ज़ुल्म किया है। और जब इससे भी काम न चलेगा तो उन पीड़ितों (मज़लूमों) ने पहले जितने पाप किये होंगे वे सब उनके हिसाबों में से काट काट कर उस आदमी के हिसाब में जोड़ दिये जावेंगे। यहां तक कि आख़ीर में वह नमाज़ें पढ़ता हुआ, रोज़े रखता हुआ और ख़ैरात करता हुआ भी नरक की धधकती हुई आग में जला दिया जायगा।"

मुसल्लिम

"सचमुच अल्लाह ने तुम्हारे लिये अपनी मां का हुकुम न मानना, और अपनी लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ देना मना किया है, और लालच को हराम क़रार दिया है।" —बुख़ारी, मुसल्लिम)

"मैं कहता हूँ कोई आदमी जो शान्त, नेक चलन और दूसरों के दुख में दुखी और सुख में सुखी रहता है, नरक में नहीं जा सकता।" —तिरमिज़ी

"तुम मुझे अपनी तरफ़ से छै बातों का विश्वास दिलादो और मैं तुम्हें बहिश्त का विश्वास दिलाता हूँ। एक जब बोलो सच, दूसरे जब वादा करो तो उसे पूरा करो, तीसरे किसी की अमानत में ख़यानत (बेईमानी) न करो। चौथे बदचलनी से बचो, पांचवें आखें हमेशा नीची रखो, और छठे किसी के साथ ज़ोर ज़बरदस्ती न करो।" —बेहक़ी

"एक दूसरे को सलाह दो कि अपनी बीवियों के साथ अच्छा बरताव करें। तुम्हारी उनके साथ शादी होती है लेकिन उन्हें सज़ा देने का तुम्हें कोई किसी तरह का भी हक़ नहीं है जब तक कि वे साफ़ साफ़ गन्दा काम न कर बैठें। वे नेक चलन रहें, तो उनके खिलाफ़ कोई बात न सोचो। और सचमुच जैसे तुम्हारी बीवियों के ऊपर तुम्हें हक़ हैं, वैसे ही तुम्हारी बीवियों को भी तुम्हारे ऊपर हक़ हैं।" —तिरमिज़ी

"जब कभी कोई आदमी किसी ग़ैर औरत के साथ अकेले में बैठता है, तो उन दोनों के बीच में, शैतान आ बैठता है।" —तिरमिज़ी

"मुझे अपने लोगों के लिये जिन बातों का सब से ज्यादह डर है वह ऐशपरस्ती (भोग विलास) और बड़े बनने की चाह है। ऐशपरस्ती आदमी को सचाई से हटा देती है और बड़े बनने

की चाह में पड़कर आदमी दूसरी दुनिया को भूल जाता है। यह दुनिया रहने वाली नहीं है, और दूसरी दुनिया बहुत पास है, दोनों की अपनी अपनी औलाद है। अगर तुमसे हो सके तो तुम इस दुनिया की औलाद बन कर न रहो। सचमुच आज तुम कर्मभूमि (कमाई की दुनिया) में हो और कल इस कर्म भूमि से निकल कर परमात्मा के सामने अपने सब कामों का हिसाब देना होगा।''

—बेहक़ी, बुख़ारी

"इस दुनिया से मोह रखना (उसे अपनाना) ही तमाम पापों की जड़ है।''

—अबु दाऊद

यही मुहम्मद साहब का बताया हुआ 'इसलाम' है, यही दुनिया के सब धर्मों का निचोड़ है।

मुहम्मद साहब के उपदेशों और क़ुरान में दो बातें और हैं जिनके बारे में कुछ कहने की ज़रूरत है। एक जेहाद और दूसरा चार शादियों की इजाज़त।

दुनिया में शायद ही कभी किसी शब्द के बारे में इतनी भारी नासमझी रही हो जितनी जेहाद शब्द के बारे में।

'जेहाद' शब्द तरह तरह से क़ुरान में सैकड़ों बार आया है। लेकिन सारी किताब में एक जगह भी 'जेहाद' लफ़्ज़ लड़ाई के माइनों में नहीं आया। अरबी में 'जेहाद' शब्द के माइने सिर्फ़ 'जेहद' यानी कोशिश या चेष्टा करना है। धर्म में अल्लाह के

नाम पर किसी तरह की भी कोशिश, चेष्टा या 'अभिक्रम' करना अपने जान और माल से, ग़रीबों की सेवा और यतीमों का पालन करके, नमाज़ पढ़कर, रोज़े रखकर या दूसरों को ख़ैरात देकर, अपने मन को क़ाबू में करके, अपने ग़ुस्से को मारकर, सच्चे दीनदार बनने की कोशिश करना, दूसरों को उपदेश देकर उन्हें सच्चे दीन पर लाना, इन माइनों में और सिर्फ़ इन माइनों में ही क़ुरान के अन्दर 'जेहाद' शब्द आया है, और इसी जेहाद का हर आदमी को उपदेश दिया गया है। मक्के की बहुत सी आयतों में, यानी तब की जबकि अभी हथियारबन्द लड़ाई की इजाज़त भी नहीं दी गई थी, जगह जगह (इन्हीं माइनों में) जेहाद करने का उपदेश है और कई जगह हुकुम है "जेहाद करो और सब्र करो।" जिन मुसलमानों ने अपने धर्म को बचाने के लिये अपना घरबार छोड़ कर इथियोपिया के ईसाई बादशाह के यहां पनाह ली थी उनके इस काम को 'जेहाद' कहा गया है। ख़ुद इसलाम के पैग़म्बर ने कहा है कि 'जेहादे अकबर' यानी 'सबसे बड़ा जेहाद' अपने नफ़्स पर क़ाबू हासिल करना और अपने ग़ुस्से को जीतना है।

क़ुरान में हथियारबन्द लड़ाई का भी कई जगह ज़िक्र है। लेकिन जहां कहीं भी लड़ाई का ज़िक्र आया है वहां 'जेहाद' नहीं, 'क़ेताल' शब्द काम में आया है, जिसके माइने अरबी में "हथियारबन्द लड़ाई" के होते हैं, क़ुरान ख़ास ख़ास सूरतों में और दूसरे के हमले के जवाब में हथियार उठाने की भी

इजाज़त देता है, लेकिन जिन सूरतों में और जिन कड़ी शर्तों के साथ इजाज़त दी गई है उनका जिक्र ऊपर किया जा चुका है।

——

एक आदमी के एक साथ कई बीवियों का रिवाज उन दिनों यूरोप और एशिया के सब देशों में था। यूरोप के सब देशों में १५ वीं सदी तक एक आदमी के जितनी चाहे बीवियां होना क़ानून से ठीक माना जाता था। इस बीसवीं सदी में यूरोप और अमरीका में "मौरमन" नाम का ईसाई गिरोह है जो एक सदी से कुछ ऊपर हुआ अमरीका में क़ायम हुआ था और जिसे, "हज़रत ईसामसीह और पिछले सन्तों का गिरोह" * कहा जाता है। इस गिरोह की धर्म की किताब 'बुक आफ़ मौरमन' में जो इलहामी (ईश्वरीय) मानी जाती है इस असूल का यानी एक से ज़्यादह बीवियों का खुला ज़िक्र आता है। अमरीका की यूटाह स्टेट और ग्रेट साल्ट लेक में अभी तक इस गिरोह के लोगों की बढ़ती हुई और ख़ुशहाल आबादियां हैं। इस गिरोह के दूसरे गुरु बिंढेम यंग के सन् १८७७ में मरते वक़्त १७ बीवियां थीं। यूरोप में भी कई जगह इस गिरोह के लोग अभी तक बढ़ रहे हैं और कई कई शादियां करते हैं। सन् १९३३ में सिर्फ़ इंगलिस्तान में उनके ८२ गिरजे थे। कई देशों में, सन् १८९० के बाद से, उनके इस रिवाज के खिलाफ़

*The Church of Jesus Christ & of Latter day Saints

क़ानून पास हुए हैं। लेकिन अमरीका तक में अभी तक उनका यह रिवाज मिट नहीं सका।

हिन्दुस्तान में जिन हिन्दू धर्मशास्त्रों से कचहरियों के अन्दर हिन्दू रिवाज का फ़ैसला किया जाता है उनमें एक आदमी के एक साथ जितनी चाहे बीवियां आज तक ठीक मानी जाती हैं। मुहम्मद साहब ने इस पुराने रिवाज को एक हद के अन्दर बांध दिया और एक आदमी के चार से ज्यादह बीवियों को हमेशा के लिये मना कर दिया।

इसके अलावा वह ज़माना अरब में आए दिन की लड़ाइयों का ज़माना था। मर्दों की तादाद घटती जा रही थी। बेवाओं और यतीमों की तादाद बढ़ती जा रही थी। और उनके गुज़र बसर का कोई न कोई ऐसा इन्तज़ाम करना ज़रूरी था जो उस ज़माने की हालत में ठीक हो। क़ुरान की जिन आयतों में चार शादियों तक की इजाज़त है वह यह हैं—

"और अगर तुम्हें इस बात का डर है कि तुम बिना इसके यतीमों के साथ इन्साफ़ न कर सकोगे तो जो औरतें तुम्हें ठीक मालूम हों उनमें से दो के, तीन के, या हद चार के साथ शादी कर लो। लेकिन अगर तुम्हें यह डर हो कि तुम उन सबके साथ एकसा इन्साफ़ का बर्ताव न कर सकोगे तो फिर सिर्फ़ एक के साथ शादी करो, या जिनके साथ कर चुके हो सो कर चुके, यह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है जिससे तुम नेकी के सीधे रास्ते से न डिगो।" [४-३]

"और अगर तुम चाहो तब भी तुम्हारी ताक़त में यह नहीं है कि तुम सब बीवियों के साथ एकसा बर्ताव कर सको।" [४-१२९]

पहली आयत ओहद की लड़ाई के ठीक बाद की है। इन आयतों से यह भी ज़ाहिर है कि क़ुरान आमतौर पर एक आदमी के लिये एक ही बीवी के रिवाज को ठीक समझता है।

मुहम्मद साहब इस बात की काफ़ी कोशिश करते रहते थे कि लोग उनकी हर बात को ही अटल न मान बैठें।

एक बार मदीने में चले जा रहे थे। रास्ते में लोग खजूर के दरख़्तों की क़लमें लगा रहे थे। मुहम्मद साहब क़लम लगाना न जानते थे। उन्होंने देखकर कहा "शायद अच्छा हो अगर तुम इन दरख़्तों को ऐसा ही बढ़ने दो।" लोगों ने उनकी राय मानली। जब वक़्त आया तो उन दरख़्तों पर फल बहुत ही कम आए। मुहम्मद साहब से कहा गया। उन्होंने जवाब दिया—"मैं तुम्हारी तरह सिर्फ़ एक आदमी हूँ, जब मैं तुमसे धर्म के मामले की बात कहूँ तो उसे मान लो, और जब मैं धर्म के अलावा किसी और मामले की बात कहूँ, तो तुम अपनी राय से काम लो, हर बात में मेरी ही राय सही मत मानो। मैं भी तो सिर्फ़ एक आदमी ही हूँ।" —मुसलिम

मक्के में, मदीने के सबसे पहले मुसलमानों से 'अक़बह

शब्द थे—"हम किसी ऐसी बात में जो 'मारूफ़ (ठीक जंचने वाली] होगी पैग़म्बर के हुकुम को न तोड़ेंगे।"

पहले मुहम्मद साहब ने क़ुरान और अपने बाक़ी सब उपदेशों को एक दूसरे से अलग कर दिया। सिर्फ़ क़ुरान 'ईश्वर' का है। और सब सिर्फ़ 'एक आदमी की राय' है। "इस किताब की कुछ आयतें 'मोहक़मात' अटल हुकुम हैं, वही इस किताब की असल यानी बुनियाद हैं। और बाक़ी आयतें 'मुतशाबेहात' [मिसाल या उपमा के तौर पर] हैं। जिन लोगों के दिलों में टेढ़ापन है वे उसी हिस्से पर चलते हैं जो मिसाल या उपमा के तौर पर है, उसके माइने निकालते फिरते हैं और लोगों में 'फ़ितना' या झगड़े खड़े कर देते हैं।" [३-६] क़ुरान कहता है "हर ज़माने के लिये किताबें हैं, ख़ुदा जिसको चाहता है मनसूख़ [रद्द] कर देता है और जिसको चाहता है क़ायम रखता है और इन सब धर्म की किताबों की माँ यानी असल किताब उसी अल्लाह के पास है।" [१३-३८,३९]

एक ऐसी हदीस में जिसे सब सच्चा मानते हैं [क़ुदसी] लिखा है कि मुहम्मद साहब ने ख़ुद अपने ज़माने के ईरानी और यूनानी मुसलमानों को अपनी अपनी बोली में नमाज़ पढ़ने की इजाज़त दी थी। वह सिर्फ़ ऊपरी रस्मों को चिपटे रहने की तरफ़ से लोगों को बार बार आगाह करते रहते थे। एक बार मुहम्मद साहब ने कहा था—

"सचमुच अब तुम लोग एक ऐसे ज़माने में रह रहे हो कि जो हिदायतें तुम्हें दी जा रही हैं उनमें से जो आदमी इस वक्त दसवें हिस्से को भी तोड़ेगा वह बरबाद हो जायगा, लेकिन इसके बाद ऐसा ज़माना आयगा कि उस वक्त के लोगों में से जो इस वक्त की हिदायतों में से दसवें हिस्से पर भी अमल करेगा वह निजात [मुक्ति] पाएगा।" —तिरमिज़ी

मुहम्मद साहब अपने ईश्वर से जिस तरह की प्रार्थनाएं किया करते थे उनसे उनके विचारों और विश्वासों की ख़ासी तसवीर हमारे सामने आ जाती है। नमाज़ में खड़े होने के वक्त वह कहते थे—

"एक सच के खोजी (हनीफ़) की हैसियत से मैं उसकी तरफ़ मुंह करता हूं जिसने आसमान और ज़मीन को बनाया। मैं एक अल्लाह के साथ किसी दूसरे को नहीं जोड़ता। सचमुच मेरी दुआ (प्रार्थना), मेरी बन्दगी (भक्ति), मेरी ज़िन्दगी और मेरी मौत सब अल्लाह के लिये हैं। वही सारी दुनिया का मालिक है। उसका कोई साझी नहीं। मैं उसी का बन्दा हूं। मैं मुसलिम (जिसने अपना सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दिया हो) हूं। ऐ अल्लाह! तू ही हमारा बादशाह है। तेरे सिवाय हमें किसी की पूजा नहीं करनी चाहिये। तू मेरा मालिक है और मैं तेरा बन्दा हूं।...... तू मेरे सब गुनाहों को माफ़ करदे। सचमुच तेरे सिवाय कोई दूसरा गुनाहों को माफ़ नहीं कर सकता। मुझे ऐसी हिदायत कर कि मेरा चाल चलन सबसे अच्छा हो। तेरे सिवाय कोई

ऐसी हिदायत नहीं कर सकता। तेरे सिवाय कोई मेरे चलन की बुराइयों को दूर नहीं कर सकता। मैं तेरे सामने हूं, तेरी सेवा में हाज़िर हूं। सब भलाई तेरे ही हाथों में है, और बुराई से तुझसे कोई वास्ता नहीं। मैं तेरे पास से आया हूं और तेरे पास ही लौटकर मुझे जाना है। तेरी ही सब शान है और तेरी ही सब बड़ाई। मैं तुझसे माफ़ी मांगता हूं और तेरे सामने तोबा करता हूं!"

सामने झुकने (रुकु) के वक़्त वह कहते थे—

"ऐ अल्लाह! मैं तुझे नमस्कार करता हूं, तुझ पर ही मेरा विश्वास है। मैं अपने को तेरे ही सपुर्द करता हूं। मेरे कान और मेरी आंख, मेरा मेजा, मेरी हड्डियां, मेरे पट्ठे सब तेरी तुच्छ भेंट हैं!"

फिर जब सिर उठाते तो कहते—

"ऐ अल्लाह! हमारे मालिक! आसमान और ज़मीन और उनके बीच की सब चीज़ें और जो कुछ तू इसके बाद पैदा करे सब तेरी तारीफ़ से भर जांय!"

फिर सिजदे के वक़्त कहते—

"ऐ अल्लाह! मैं तेरी पूजा करता हूं, तुझ पर ही मेरा भरोसा है, मैं अपने को तेरे ही सपुर्द करता हूं। मेरा मुंह उसकी तारीफ़ करता है जिसने मुझे बनाया, मुझे रूप दिया, मेरे आंख, कान बनाए, अल्लाह की शान है, वही सबसे अच्छा बनाने वाला है!"

आख़ीर में कहते—

"ऐ अल्लाह! मेरे सब गुनाहों को माफ़ कर जो मैंने अब तक किये हैं उन्हें भी, और जो मुझसे आगे हो जांय उन्हें भी, जो गुनाह

मैंने छिपाकर किये हों वह भी, और जिस बात में भी मैंने हद को तोड़ा हो, और और जो जो बातें मुझसे ज़्यादह तुझे मुझमें दिखाई देती हों। तू ही सबका शुरू, तू ही सबका आख़ीर है। तेरे सिवाय कोई पूजा के लायक़ नहीं !"

— मुसलिम

एक दूसरी बार की मुहम्मद साहब की प्रार्थना है—

"ऐ अल्लाह ! मेरे दिल को पाक कर, उसमें कपट न रहे ! मेरे कामों को पाक कर, उनमें दिखावा न हो ! मेरी ज़बान को पाक कर, वह कभी झूठ न बोले ! मेरी आंखों को पाक कर, उनमें छल न हो ! सचमुच आंखों के अन्दर के छल को और जो कुछ लोगों के सीनों (दिलों) में छिपा रहता है उस सबको तू जानता है !"

यूरोप वालों की कुछ रायें

मशहूर अंगरेज़ फ़िलॉसफ़र कारलाइल मुहम्मद साहब के बारे में लिखता है—

"वह प्रकृति (क़ुदरत) की बड़ी गोद से निकला हुआ ज़िन्दगी का एक ज़बरदस्त दहकता हुआ अंगारा था जो दुनियाँ के बनाने वाले के हुकुम से दुनिया को रोशन करने और जगाने के लिये आया था!"

और आगे चलकर कारलाइल लिखता है—

"वह शुरू से ख़ामोश, लेकिन महान था। वह उन लोगों में से था जो धुन के पक्के और लगन के सच्चे हुए बिना रह नहीं सकते। इस तरह के आदमियों को ख़ुद प्रकृति (क़ुदरत) शुरू से सच्चा बनाती है। दूसरे लोग रस्मों, रिवाजों और सुनी सुनाई बातों पर चलते रहते हैं। इन्हीं से उनकी तसल्ली हो जाती है। लेकिन इस तरह के आदमी की आत्मा रस्म रिवाजों के परदे के पीछे न छिप सकती थी। उसने अपनी पूरी आत्मा के साथ चीज़ों की असलीयत के जानने की कोशिश की। उसने इस ज़िन्दगी के ज़बरदस्त रहस्य (राज़) को,

उसके डरावने पहलुओं और उसकी चमक दमक, दोनों को पूरी तरह जानने की कोशिश की। कोई सुनी सुनाई बात उसकी आत्मा, उसके अस्तित्व यानी उसकी 'हस्ती' को दबा न सकती थी। इसमें कोई शक नहीं कि इस तरह की सच्ची लगनवाले आदमी में ईश्वर का कुछ ख़ास अंश (अनसर) होता है। इस तरह के आदमी के मुंह से निकले हुए शब्द सीधे क़ुदरत (प्रकृति) के दिल से निकले हुए और क़ुदरत ही की आवाज़ होते हैं। लोग उसे इस तरह सुनते हैं और सुनेंगे जिस तरह किसी दूसरे की बात नहीं सुन सकते। उसके शब्दों के सामने और सब सिर्फ़ हवा है। शुरू से ही हज़ारों तरह के विचार, यात्राओं में और सफ़र में, इस आदमी के दिल में पैदा होते रहे। मैं क्या हूं ? यह अथाह चीज़, जिसे लोग दुनिया कहते हैं, जिसमें मैं रहता हूं, क्या है ? ज़िन्दगी क्या चीज़ है ? मौत क्या चीज़ है ? मैं क्या मानूं ? मैं क्या करूं ? हिरा पहाड़ और सिनाई पर्वत की सूनी चट्टानों ने, या सुनसान रेगिस्तानों ने कोई जवाब न दिया। उस बड़े आसमान ने जो सिर के ऊपर ख़ामोश फैला हुआ था और जिसके नीलेपन पर सितारे जगमगा रहे थे कोई जवाब न दिया। कहीं से कोई जवाब न मिला। आख़ीर में उसकी अपनी आत्मा को, और परमेश्वर की जो आवाज़ या इलहाम उस आत्मा के अन्दर काम कर रहा था उसे जवाब देना पड़ा।"*

* Heroes, Heroworship and the Heroic in History, Sec. II.

मुहम्मद साहब की कोशिशों और कामयाबियों को बयान करते हुए एक दूसरा विद्वान लिखता है—

"जो बुराइयां मुहम्मद साहब के ज़माने में अरब में सबसे ज़्यादा फैली हुई थीं, जिन्हें क़ुरान में ज़ोरों के साथ बुरा कहा गया है और जिनसे क़तई रोका गया है, वे ये थीं—शराब पीना, बदचलनी करना, एक साथ जितनी चाहे बीवियां रखना, लड़कियों को मार डालना, बेतहाशा जुआ खेलना, सूद खाना और उसके बहाने दूसरों को लूटना, और जादू टोने जैसी चीज़ों में अन्धा विश्वास। मुहम्मद साहब की कोशिशों से इन बुरे रिवाजों में से कुछ बिलकुल मिट गए और बाक़ी कम हो गए। जिससे अरबों के चाल चलन में बहुत बड़ा सुधार हुआ और बहुत बड़ी तरक़्क़ी हुई। यह मुहम्मद साहब के जोश और उनके असर दोनों का एक अजीब और ज़बरदस्त सबूत है। लड़कियों की हत्या और शराबख़ोरी का बिल्कुल बन्द हो जाना मुहम्मद साहब के काम की सबसे ज़बरदस्त जीत है।"

"अपनी क़ौम का मुहम्मद साहब ने बहुत ही बड़ा फ़ायदा और उस पर बड़ा अहसान किया। वह एक ऐसे मुल्क में पैदा हुए थे जहां न कोई ढङ्ग की हकूमत थी, न कोई ऐसा मज़हब जिसे अक़ल मान ले और न किसी तरह का सदाचार या नेकचलनी। इन तीनों का वहां पता भी न था। मुहम्मद साहब ने इन तीनों को क़ायम किया। अपनी ग़ैरमामूली सूझ के केवल एक ही वार में उन्होंने अपने देश वालों की हकूमत, उनके धर्म और उनके चलन तीनों को एक साथ सुधार दिया। बहुत से अलग अलग बिखरे हुए क़बीलों की जगह

उन्होंने एक मिली हुई क़ौम छोड़ी। बहुत से देवी देवताओं और ख़ुदाओं में अन्धे विश्वास की जगह उन्होंने सबके मालिक, सब कुछ कर सकने वाले एक ऐसे दयालु परमात्मा में विश्वास पैदा कर दिया जिसे अक़ल समझ सकती थी। उन्होंने लोगों को यह बताया कि परमात्मा हमें हरदम देखता रहता है और हमारे अच्छे और बुरे सब कामों का ठीक ठीक फल देता है। इस विश्वास के सहारे ही उन्होंने लोगों को ठीक ठीक ज़िन्दगी बसर करना सिखा दिया।" *

मुहम्मद साहब के उपदेश ईश्वर का इलहाम या ईश्वर का सन्देशा थे, इस बारे में एक और विद्वान लिखता है—

"सारी भलाई का सोता सचमुच एक परमेश्वर है। अगर उस परमेश्वर की तरफ़ के इलहाम नाम की कोई चीज़ होती है तो जिस धर्म का मुहम्मद साहब ने उपदेश दिया वह सिर्फ़ दूसरों की नक़ल से या दूसरों की अच्छी अच्छी बातें चुनकर ही नहीं बना लिया गया था, वह सचमुच इलहामी (inspired या ईश्वरीय) था। मैं अपने छोटेपन को ख़ूब समझते हुए यह कहने की हिम्मत करता हूं कि अगर अपने को मिटा देना, नेकनीयती और लगन, ख़ुद अपने मिशन में अटल विश्वास, अपने ज़माने की बुराइयों और भूलों को ठीक ठीक समझ लेने की ग़ैर मामूली ताक़त, और उन्हें दूर करने के अच्छे से अच्छे तरीक़ों को समझ लेना और उन्हें काम में ला सकना, अगर

* W. R. W. Stephen's, Christianity and Islam, The Bible and the Quran, PP. 112 and 129.

ये सब बातें इलहाम की ऐसी बाहरी अलामतें हैं जिन्हें सब देख सकें तो इसमें कोई शक नहीं मुहम्मद साहब का मिशन इलहामी था।"*

एक दूसरा विद्वान लिखता है—

"आज तक किसी भी ज़माने में, गहरे से गहरे माइनों में जो सच्ची से सच्ची और ज़्यादह से ज़्यादह लगन वाली आत्माएं पैदा हुई हैं मुहम्मद उनमें से एक था। वह सिर्फ़ एक. महापुरुष ही न था बल्कि इनसानी क़ौम ने जो महान से महान—यानी सच्चे से सच्चे आदमी कभी भी पैदा किये हैं, उनमें से एक था। महान, पैग़म्बर की हैसियत से भी और देशभक्त और राजनीति (सियासत) जानने वाले की हैसियत से भी। वह दुनिया और दीन दोनों का सुधारने और बढ़ाने वाला था, जिसने एक बड़ी क़ौम बनाई, एक उससे बड़ी सल्तनत (साम्राज्य) बनाई, और इन सबसे बढ़कर एक और भी ज़्यादह बड़ा धर्म क़ायम किया।·········वह वह आदमी था कि आइन्दा जब कभी किसी ज़माने में दुनिया के लोग, जो आजकल मज़हब के नाम पर तरह तरह के अलग अलग गिरोह बनाए बैठे हैं, इन गिरोहबन्दियों से बाहर निकल कर एक ज़्यादह व्यापक (आलमगीर) और ज़्यादह समझ में आने वाले मानव धर्म (मज़हबे इन्सानियत) को मानना शुरू कर देंगे, उस वक़्त वह (मुहम्मद) भी आज से कहीं ज़्यादह इज़्ज़त के साथ याद किया

---

* Dr Leitner, quoted by M. A. Fazl in the Life of Mohammed', P. 219-220.

जावेगा। सचमुच मुहम्मद बड़े से बड़े आदमियों में भी बहुत बड़ा था।"*

आखीर में एक और विद्वान लिखता है –

"मुहम्मद साहब को एक साथ तीन चीज़ों के क़ायम करने की ख़ुशक़िस्मती मिली, एक क़ौम (नेशन), एक राज (स्टेट) और एक धर्म। इतिहास में कहीं इस तरह की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती।"†

मुहम्मद साहब के मरने के सौ बरस के बाद अरबों का साम्राज्य जितना बड़ा और जितनी दूर तक फैला हुआ था रोम का मशहूर साम्राज्य अपने अच्छे से अच्छे दिनों में कभी न उतना बड़ा हुआ न उतनी दूर तक फैला। %

२० वीं सदी ईसवी के शुरू में दुनिया में ३० करोड़ से ऊपर इन्सान इसलाम धर्म के मानने वाले थे।



* Islam, Her Moral and Spiritual Value, by Major A. G. Leonard, PP. 21 and 109.

† Mohammad and Mohammadanisn, by Bosworth Smith, P. 340.

% The Preaching of Islam, T. W. Arnold, P. 2.

कुछ किताबें जिनसे मदद ली गई है

१—The Holy Quran, Arabic Text with English, Translation and commentry, by Maulvi Muhammad Ali M.A., LL.B.

२—The Quran, with a Preliminary Discourse, by George Sale.

३—The Quran in English, with Arabic Text, by Mirza Abul Fazl.

४—तर्जुमानुल क़ुरान-मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (उर्दू)

५—Selections from the Quran, by E. W. Lane.

६—The Wisdom of the Quran, by General Mahmud Muhtar Pasha.

७—The Quran, by J. M. Rodwell.

८—The Quran, by E. H. Palmer.

९—Islam: Her Moral and Spiritual Value, by Major Arthur Glyn Leonard.

१०—The Spirit of Islam, by Syed Amir Ali M.A., C.I.E

११—The Preaching of Islam, by T. W. Arnold.

१२—Mohammed and Mohammedanism, by R. Bosworth Smith, M. A.

१३—The Life of Muhammad, by Mirza Abul Fazl.

१४—Sayings of the Prophet Muhammad, by Mirza Abul Fazal.

१५—Higgins, an apology for Muhammad. Edited by Mirza Abul Fazl with an Introduction

१६—Essays on the Life of Muhammad etc. by Sir Syed Ahmad.

१७—Heroes, Hero-worship, and the Heroic in History, by Thomas Carlyle.

१८—A Critical Exposition of the Popular 'Jihad', by Maulvi Chiragh Ali.

१९—The Doctrine of Sin, by Rev. Gardner.

२०—The Quranic Doctrine of Sin, by Rev. Gardner.

२१—The Quranic Doctrine of Salvation, by Rev. W. R. W. Gardner M. A.

२२—The Speeches and Table Talk on the Prophet Muhammad, by Stanley Lane Pool.

२३—The Ideal Prophet, by Khwaja Kamaluddin

२४—A History of the Intellectual Development of Europe, by J. W. Draper.

२५—सीरतुन्नबी—शिबली (उर्दू)

२६—Life of Mohammet, by Sir William Muir.

२७—A Description of the East and Other Countries, by Richard Pococke, Bishop of Meath.

२८—तफ़सीरुल क़ुरान-सैयद अहमद खां (उर्दू)

२९—Christianity and Islam: The Bible and the Quran, by W. R. W. Stephens.

३०—Life of Muhammad, by Washington Irwing.

३१—मज़ाकुल आरफ़ीन—(उर्दू तरजुमा अहियाय उलूमुद्दीन-इमाम ग़िज़ाली)

३२—मसनवी—मौलाना रूम [फ़ारसी]

३३—गुलशने राज़ [फ़ारसी]